

**TEXT FLY WITHIN
THE BOOK ONLY**

**TIGHT BINGING
BOOK**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178828

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^H83

Accession No. P. G. H 3763

Author T12R

Title खोज - साहित्य

This book should be returned on or before the date last marked below.

आखिरी कविता

१-अमित-चरित

श्री अमित राय बैरिस्टर है। अंगरेजी ढाँचेमें उसकी 'राय' उपाधिने जब 'राय' और 'रे' रूपान्तर धारण किया तब उसकी श्री तो ज़रूरी रही, किन्तु अक्षर-संख्या बढ़ गई। यही कारण है कि अमितने अपने नाममें ऐसा फेरफार कर डाला कि अंगरेज बन्धु-बान्धवियोंके मुँहसे उसका उच्चारण बन गया 'ऑमिट राए'।

अमितके बाप थे दिग्विजयी बैरिस्टर। वे जिस संख्यामें रुपये इकट्ठा कर गये थे वह आगेकी तीन पीढ़ियोंके अधःपतनके लिए काफी था। किन्तु, पैतृक सम्पत्तिके इस घातक सङ्घातमें भी अमित बिना किसी विपत्तिके ऐसा बचकर निकल गया कि इस जीवनमें उसके कोई आँच ही नहीं आई।

कलकत्ता - विश्वविद्यालयके बी० ए० के कोठेमें पाँव रखनेके पहले ही अमित ऑक्सफोर्डमें जाकर भरती हो गया। वहाँ परीक्षा देते-देते और न देते-देते उसके सात साल यों ही बीत गये। बुद्धि ज्यादा होनेसे उसने पढ़ाई-लिखाई ज्यादा नहीं की, किन्तु फिर भी विद्यामें वह कम नहीं मालूम पड़ता। उसके पिताने उससे किसी असाधारण बातकी प्रत्याशा नहीं की थी। उनकी इच्छा थी कि उनके एकमात्र पुत्रके मनपर ऑक्सफोर्डका रंग ऐसा पक्का होकर चढ़े कि देशमें आनेके बाद भी भट्टीका चढ़ना सह सके।

अमितको मैं पसन्द करता हूँ। खासा लड़का है। मैं हूँ नवीन लेखक। संख्यामें मेरे पाठक कम हैं; किन्तु योग्यतामें उन सबमें श्रेष्ठ है अमित। मेरी रचना-शैलीका ठाट उसकी आँखोंमें खूब समायामा है। उसकी धारणा है कि 'हमारे देशके साहित्य-बाजारमें जिन लोगोंका नाम है उनके स्टाइल (शैली) नहीं है। जीव-सृष्टिमें ऊँट जन्तु जैसा है, इन लेखकोंकी रचना भी वैसी ही है। कंधे और गरदन, सामने और पीछे, पीठ और पेट सब ढंगे हैं। चाल है ढीलीढाली और डगमग। बंगला-साहित्यकी खुरमुण्ड साचट मरुभूमिमें ही उसका चलन है।'।

समालोचकोंसे पहलेसे ही कह देना अच्छा है कि यह मत मेरा नहीं है । अमितका कहना है, फैशन है 'मुखोश'^१ और टाइल 'मुखश्री' । उसकी रायमें, "जो लोग साहित्यके अमीर-उमराव-दलके हैं और जो अपनी तबीयत से अपना मन रखकर चलते हैं, स्टाइल (शैली) उन्हींकी है । और जो लोग अमला-फैला दलके हैं और अन्य पाँच-जनोंका मन रखना जिनका पेशा है, फैशन उनकी चीज है । बंकिमी शैली बङ्किमचन्द्रके 'विषवृक्ष'में है । बंकिम ने उसमें अपनेको सुन्दरतासे निभा लिया है । और बंकिमी फैशन है नसीराम-लिखित 'मनमोहनके मोहनबागान' में । उसमें नसीरामने बङ्किमको मिट्टी कर दिया है । 'बारोयारी'में^२ तम्बूकी कनातके नीचे सिर्फ पेशेवर नर्तकियोंके दर्शन मिलते हैं, किन्तु, 'शुभ-दृष्टि'के समय वधूके मुँह देखनेकी शुभ घड़ीमें तो बनारसी दुपट्टेका धूँघट चाहिए ही चाहिए । इसमें कनात हुई फैशनकी चीज और बनारसी दुपट्टा स्टाइलकी,— विशेषका मुखड़ा विशेष रंगकी छायायें देखनेके लिए ।" अमित कहता है, "बाजारके लोगोंके पैदल चलनेके रास्तेके बाहर हमलोगोंके पैर कदम रखनेका साहस नहीं करते, इसीसे हमारे देशमें स्टाइलका इतना अनादर है । दक्षयज्ञकी कथामें इस बातकी पौराणिक व्याख्या मिलती है । इन्द्र-चन्द्र-वरुण स्वर्गके बिलकुल फैशन-दुरुस्त देवता थे, याज्ञिक-इलाकेमें उन्हें निमन्त्रण भी मिल जाया करता था । शिवके थी स्टाइल, और वह इतनी ऑरिजिनल कि मन्त्र-घोंकू यजमान लोग उन्हें हव्य-कव्य देना कायदेके खिलाफ समझते थे ।" ऑक्सफोर्डके बी० ए० के मुँहसे ये सब बातें सुनना मुझे अच्छा लगता है । क्योंकि मेरा विश्वास है कि मेरे लिखनेमें स्टाइल है, और इसलिए मेरी सभी पुस्तकें एक ही संस्काणमें कैबल्यको प्राप्त हो जाती हैं, वे 'न पुनरावर्तन्ते' ।

१ 'मुखोश'=मुखकोश, अर्थात् कागज आदिका बना नकली चेहरा ।

२ बारोयारी=बारहयारी । बारह (बहुत) यार या मित्र मिलकर जिस पूजा-उत्सवको करते हैं उसे 'बारोयारी' कहते हैं । इसमें रामलीलाके ढंगके नाटक (यात्रा) और अन्यान्य खेल वगैरह भी खेले जाते हैं ।

मेरे साले नवकृष्णको अमितकी ये सब बातें बिलकुल ही सहन नहीं होती। वह कहता है, 'रक्खो तुम्हारा ऑक्सफोर्डका पास।' वह ठहरा अंग्रेजी साहित्यमें रोमहर्षक एम०ए०, उसे पढ़ना पड़ा है बहुत और समझना पड़ा है कम। उस दिन उसने मुझसे कहा, "अमित हमेशा जो छोटे लेखकोंको बड़ा बनाया करता है, सो सिर्फ बड़े लेखकोंको छोटा करनेके लिए। अवज्ञा का ढोल पीटना उसके शौकमें शामिल है। और, तुम्हें उसने बनाया है अपने ढोलका डण्डा।"

दुःखकी बात है कि इस आलोचनाके स्थानपर मौजूद थीं मेरी स्त्री, स्वयं उसकी सहोदरा। परन्तु परम सन्तोषकी बात यह है कि मेरे सालेकी बात उन्हें जरा भी अच्छी नहीं लगी। मैं देखता हूँ कि अमितके साथ ही उनकी रुचि ज्यादा मेल खाती है; हालाँ कि उन्होंने पढ़ा-सुना ज्यादा नहीं, फिर भी, स्त्रियोंकी स्वाभाविक बुद्धि आश्चर्यजनक होती है।

बहुधा मेरे मनमें भी खटका हो जाया करता है जब देखता हूँ कि कितने ही नामी अंगरेज लेखकोंको भी नगण्य कहते-हुए अमितकी छाती नहीं दहलती। वे हैं जिन्हें कहा जा सकता है बहूबाजारके^१ चालू लेखक, बड़ेबाजारकी छाप-शुदा, प्रशंसा करनेके लिए जिनकी रचना पढ़-देखनेकी जरूरत ही नहीं, आँख मीचकर गुण-गान करनेसे ही पास-मार्क मिल जाते हैं। अमितके लिए भी उनकी रचनाएँ पढ़-देखना अनावश्यक है, आँख मीचकर उनकी निन्दा करनेमें उसे कोई खटका या भिन्नता नहीं। असलमें, जो नामी लेखक हैं वे उसके लिए बहुत ज्यादा सरकारी हैं, वर्धमान स्टेशनके वेटिंग-रूमकी तरह; और जिन्हें उसने स्वयं ढूँढ़ निकाला है उनपर उसका खास दखल है, अर्थात् वह ठहरा स्पेशल ट्रेनका सेलून-कमरा।

अमितका नशा ही है स्टाइलमें। केवल साहित्य चुननेके काममें ही नहीं, वेश-भूषा और व्यवहारमें भी। उसके चेहरेपर एक विशेष छन्द, एक खास ढंग है। पाँच जनोंमें वह कोई एक नहीं है, वह है बिलकुल पञ्चम। औरोंसे

१ 'बहूबाजार' कलकत्तेका एक मुहल्ला है, जिसमें ऐसे पत्रों और पुस्तकोंका प्रकाशन होता है जिनका दृष्टिकोण व्यापारमात्र है।

अलग ही उसपर दृष्टि पड़ती है। दाढ़ी-मूँछ सफाचट, मजा-घसा चिकना श्यामवर्ण परिपुष्ट चेहरा, स्फूर्ति-भरा भाव, आँखें चञ्चल, हँसी चञ्चल, हिलना-डुलना और चलना-फिरना चञ्चल, बातका जवाब देनेमें जरा भी देर नहीं होती, और मन है ऐसा एक तरहका चममक-पत्थर कि ठन-से जरा ठोंकते ही चिनगारियाँ छूटने लगती हैं। अकसर वह देशी कपड़े पहना करता है, क्योंकि उसके दलके देशी नहीं पहनते। धोती पहनता है बिना-किनारीकी सफेद, और खूब जतनसे चुनी हुई; क्योंकि उसकी-सी उमरमें इस तरहकी धोती पहननेका चलन नहीं है। खूब ढीला-ढाला कुरता पहनता है, जिसमें बायें कंधेसे लेकर दाहनी तरफकी कमर तक बटन लगे रहते हैं और उसकी आस्तीनोंके सामनेके हिस्से कोहनी तक दो भागोंमें विभक्त होते हैं, कमरमें धोतीको घेरे - हुए एक जरीदार चौड़ा कथई रंगका फीता है, जिसके बाईं तरफ लटकती रहती है वृन्दावनी छोटकी एक छोटी-सी थैली, और उसमें रहती है उसकी घड़ी। पाँवोंमें पहनता है सफेद चमड़ेपर लाल चमड़ेका काम किया-हुआ कटकी जूता। जब कभी बाहर जाता है तो एक तह किया हुआ किनारीदार मदरासी दुपट्टा बायें कंधेसे घुटने तक लटकता रहता है। मित्र-मण्डलीमें जब कहींसे उसे निमन्त्रण मिलता है तो सिरपर मुसलमानी ढंगकी लखनवी पल्लेदार टोपी पहन लेता है, सफेदपर सफेद कामदार। इसे ठीक पोशाक नहीं कहा जा सकता, यह है उसकी एक तरहकी जोरकी हँसी। उसकी विलायती पोशाकका मर्म भी मेरी समझमें नहीं आता। जो समझते हैं वे कहते हैं 'कुछ ढोली-ढाली जरूर है, किन्तु है अंगरेजीमें जिसे कहते हैं डिस्टिगुइश्ड।' अपनेको अपूर्व और अजीब दिखानेका शौक उसे नहीं है, मगर फैशनकी दिल्लगी उड़ानेका कौतुक उसमें काफीसे ज्यादा है। किसी तरह उमर मिलाकर जन्मपत्रीके सबूतके बलपर जो 'युवक' हैं उनके दर्शन तो राह-चलते मिल जाया करते हैं, किन्तु अमितका दुर्लभ युवकत्व निर्जला यानी विशुद्ध यौवनके ही जोरपर है; असलमें वह है बिलकुल बेहिसाबी, उड़ाऊ, बाढ़की तरह बहा जा रहा है बाहरकी ओर, सब-कुछ बहाये लिये जा रहा है, हाथमें कुछ नहीं रखता।

इधर उसकी दो बहनें हैं, जिनके चालू नाम हैं सिसी और लिसी। मानो वे नूतनबाजारमें^१ बिलकुल हालकी-आई ताजा सब्जी हों,— फैशनकी ढालीमें आपाद-मस्तक जतनसे पैक-किये-हुए पहले नम्बरके खास पैकेट। ऊँचे खुरवाले जूते हैं, खुली छातीकी लैसदार जाकेटकी खुली जगहमें कढ़रुवा-मिश्रित मूँगेकी माला है, और देहपर तिरछी भङ्गिमासे कसके लिपटी-हुई साड़ी। वे खुटखुट करके द्रुत-लयमें चलती हैं, ऊँचे स्वरोंमें बोलती हैं और स्तर-स्तरसे उठाती रहती हैं सूक्ष्माग्र हँसी। मुँहको जरा तिरछा करके स्मित हास्यके साथ ऊँचे कटाक्षसे निहारती हैं, जानती हैं वे, कि किसे कहते हैं 'सारगर्भ चितवन'। गुलाबी रेशमका पंखा क्षण-क्षणमें गालोंके पास फुरफुराया करती हैं ; और पुरुष मित्रकी कुरसीके इत्थेपर बैठकर पंखेके आघातसे उनकी कृत्रिम स्पर्धापर तर्जन प्रकट किया करती हैं।

अपने दलकी तरुणियोंके साथ अमितका व्यवहार देखकर उसके दलके पुरुषोंके मनमें ईर्ष्याका उदय होता है। निर्विशेष-भावसे स्त्रियोंके प्रति अमितके औदासीन्य नहीं है ; और विशेष-भावसे किसीके प्रति आसक्ति भी देखनेमें नहीं आती उसमें, किन्तु साथ ही साधारण-भावसे कहींपर मधुर रसका अभाव भी नहीं होता। एक वाक्यमें कहा जाय तो कहना होगा कि महिलाओंके सम्बन्धमें उसके आग्रह नहीं है, उत्साह है। अमित पार्टियोंमें भी जाता है, ताश भी खेलता है, और अपनी तबीयतसे ही खेलमें हारता है। जिस स्त्रीका गला बेसुरा होता है उससे दूसरी बार गानेके लिए जिद करता है। किसीको भद्दे रंगके कपड़े पहने देखता है तो पूछता है कि 'यह कपड़ा किस दूकानपर मिलता है ?' किसी भी आलापिताके साथ बात करता है तो खास पक्षपातका स्वर लगाता है, और मजा यह कि सभी जानते हैं कि उसका पक्षपात बिलकुल निरपेक्ष है। जो आदमी बहुत देवताओंका पुजारी है, एकान्तमें वह सभी देवताओंकी 'सब देवताओंमें बड़ा' कहकर स्तुति किया करता है। देवताओंके भी समझनेमें कुछ बाकी रहता, किन्तु फिर भी वे खुश होते हैं। लड़कियोंकी माताओंकी आशा तो किसी भी तरह कम नहीं होती, किन्तु लड़कियोंने समझ

लिया है कि 'अमित सुनहले रंगकी दिगन्त-रेखा है, पकड़ाई दिये-हुए ही है किन्तु पकड़में आयेगा हरगिज नहीं।' स्त्रियोंके विषयमें उसका मन सिर्फ तर्क ही किया करता है, मीमांसापर नहीं पहुँचता। इसीलिए कहीं-न-पहुँचनेके आलाप-परिचयके मार्गमें उसके इतना ज्यादा दुःसाहस है ; और इसीसे बड़ी आसानीसे वह सबके साथ मेल-जोल कर सकता है। पासमें दाह्य-वस्तु रहने पर भी उसकी तरफकी आग्नेयता निरापद सुरक्षित है।

उस दिन पिकनिकमें, गंगा-किनारे जब उस पारकी घनी काली पुञ्जीभूत स्तब्धताके ऊपर चाँद निकला तब उसके पास थी लिली गांगुली। उससे उसने मृदुस्वरमें कहा, "गङ्गाके उप पार वह नया चाँद है और इस पार तुम हो और मैं हूँ। ऐसा समावेश अनन्तकालमें फिर कभी नहीं होनेका।"

पहले तो लिलीका मन एक क्षणमें छलछला उठा था, किन्तु वह जानती थी कि अमितकी इस बातमें जो-कुछ सत्य है वह है सिर्फ उसके कहनेके ढंगमें। उससे ज्यादा दावा करनेके मानी हैं बुद्बुदके ऊपरकी वर्णच्छटापर दावा करना। इसीसे, अपनेको क्षण-भरकी बेहोशीसे अलग ढकेलकर लिली हँस उठी, बोली, "ऑमिट, तुमने जो कहा वह इतना ज्यादा सच है कि न कहनेसे भी चल जाता। अभी-अभी यह जो एक मेढ़क टपसे पानीमें कूद पड़ा, सो, यह भी तो अनन्तकालमें फिर कभी नहीं होनेका।"

अमित हँस दिया ; बोला, "फर्क है, लिली, असीम फर्क है। आजकी संध्यामें उस मेढ़कका कूदना एक गैरसिलसिलेकी टूटी-फूटी चीज है। किन्तु तुममें हममें और चाँदमें, गङ्गाकी धारामें और आकाशके तारोंमें एक सम्पूर्ण ऐकतानिक सृष्टि है, बैटोफेनको 'चन्द्रालोक-गीतिका' है सर्वत्र। और मुझे तो लगता है कि विश्वकर्माके कारखानेमें एक स्वर्गीय पागल सुनार है, उसने ज्यों ही एक निदोष गोल सोनेके चक्रमें नीलमके साथ हीरा और हीराके साथ पन्ना लगाकर एक पहरकी अँगूठी बनाकर पूरी की त्यों ही उसे समुद्रके पानीमें डाल दिया। अब उसे ढूँढ़कर कोई पा नहीं सकता।"

"अच्छा ही हुआ, तुम्हारे लिए कोई फिकरकी बात नहीं रही, ऑमिट, विश्वकर्माके सुनारका बिल तुम्हें नहीं चुकाना पड़ेगा।"

“लेकिन, लिली, करोड़ों - अरबों युगोंके बाद अगर कहीं दैवसे मङ्गल-ग्रहके लाल अरण्यकी छायामें, उसकी किसी-एक हजार-कोसी नहरके किनारे मेरी-तुम्हारी आमने-सामने भेंट हो जाय, और अगर शकुन्तलाका वह मल्लाह बोयल मङ्गलीका पेट चीरकर आजके इस अपूर्व सुनहले क्षणको हमारे सामने ला धरे, तब हम चौंककर एक दूसरेके मुँहकी तरफ देखते हो रह जायेंगे। फिर क्या होगा सोच देखो।”

लिलीने अमितको पंखेसे मारकर कहा, “फिर सुनहला क्षण अनमना हो कर छूटके जा पड़ेगा समुद्रके पानीमें। फिर वह ढूँढ़े नहीं मिलेगा। पागल सुनारके गढ़े-हुए ऐसे तुम्हारे कितने ही क्षण छूटकर गिर गये हैं। भूल गये हो, इसीसे उनका कोई हिसाब नहीं रहा।”

इतना कहकर लिली चटसे उठकर अपनी सखियोंके साथ जा मिली। बहुत-सी घटनाओंमेंसे मात्र एक घटनाका यहाँ नमूना दे दिया गया है।

अमितकी बहनें सिसी और लिसी उससे कहतीं, “अमी, तुम ब्याह क्यों नहीं करते?”

अमित जवाब देता, “ब्याहके मामलेमें सबसे जरूरी चीज है पात्री, उसके बाद पात्र।”

सिसी कहती, “तुमने तो दंग कर दिया, अमी! लड़की तो इतनी हैं—”

अमित कहता, “लड़कियोंसे ब्याह होता था उस प्राचीन कालमें, लक्षण मिलाकर। मैं चाहता हूँ पात्री, अपने परिचयसे ही जिसका परिचय हो, और जगत्में वह हो अद्वितीय।”

सिसी कहती, “लड़की तुम्हारे घर आते ही तुम होगे प्रथम और वह होगी द्वितीय, और तुम्हारा परिचय ही होगा उसका परिचय।”

अमित कहता, “मैं मन-ही-मन जिस लड़कीकी व्यर्थ आशामें बरेखी कर रहा हूँ वह बिन-ठिकानेकी लड़की है। अकसर वह घर तक नहीं आ पाती। वह आकाशसे गिरता-हुआ तारा है, जो हृदयका वायुमण्डल छूते-न-छूते ही जल उठता है, हवामें बिला जाता है, घरकी मिट्टी तक आ ही नहीं पाता।”

सिसी कहती, “अर्थात्, वह तुम्हारी बहनोंके समान कतई नहीं।”

अमित कहता, “अर्थात्, वह घरमें आकर केवल घरके आदमियोंकी संख्या नहीं बढ़ाती।”

लिसी कहती, “अच्छा, बहन सिसी, बिमी बोस तो अमीके लिए पलक बिछाये राह देख रही है, इशारा करते ही दौड़ी चली आती है। वह इन्हें क्यों नहीं पसन्द ? कहते हैं, ‘उसमें कलचर नहीं।’ क्यों, बहन, वह तो एम० ए० में ‘बॉटनी’में फर्स्ट है। आखिर विद्याको ही तो कलचर कहते हैं।”

अमित कहता, “हाँ, कमल-हीरेके पत्थरको ही विद्या कहते हैं ; और उससे जो प्रकाश छिटक निकलता है उसे कहते हैं कलचर। पत्थरमें भार है, और प्रकाश है दीप्ति।”

लिसी गुस्सेमें आकर कहती, “हुँह, बिमी बोसका आदर भी नहीं इनके मनमें। ये खुद ही क्या उसके योग्य हैं ! — तुम अगर बिमी बोससे ब्याह करनेके लिए पागल भी हो उठो, तो मैं उसे सावधान कर दूँगी कि वह तुम्हारी तरफ मुँह फेरके ताके भी नहीं।”

अमित कहता, “पागल बगैर हुए मैं बिमी बोसके साथ ब्याह करना ही क्यों चाहूँगा ? उस समय मेरे ब्याहको चिन्ता न करके योग्य चिकित्साकी ही चिन्ता करनी होगी।”

आत्मीय-स्वजनोंने तो अमितके ब्याहकी आशा ही छोड़ दी है। उन लोगोंने तय कर लिया है कि ब्याहकी जिम्मेदारी लेनेकी योग्यता ही नहीं उसमें, इसीसे वह सिर्फ असम्भवका स्वप्न देखकर और उलटी बातें कहकर आदमीको चौंकाता फिरता है। असलमें, उसका मन है पिचाश-दीपिका, मैदान हो या रास्ता, सर्वत्र धोखा ही दिया करता है, उसे पकड़के घरमें नहीं लाया जा सकता।

इन दिनों अमित जहाँ-तहाँ हा-हा हो-हो करता फिरता है। ‘फिरपो’ होटलमें वह जिसे - तिसे चाय पिलाया करता है, और चाहे जब मित्रोंको मोटरमें बिठाकर अनावश्यक घुमा लाता है। यहाँ-वहाँसे वह चाहे जो चीज खरीदता और चाहे जिसको बाँट देता है, और अंग्रेजी किताबें हाल-की-हाल खरीदकर चाहे जिसके घरमें डाल आता है, फिर लाता ही नहीं।

उसकी बहनें उसके जिस स्वभावके कारण उससे सख्त नाराज रहती हैं वह है उसका उलटी बात कहनेका ढंग। सज्जनोंकी सभामें जो-कुछ सर्वजन-अनुमोदित होगा उसके विपरीत वह कुछ-न-कुछ कह ही बैठेगा।

एक दिन जब कि कोई राष्ट्रतत्त्ववेत्ता प्रजातन्त्रके गुण वर्णन कर रहा था तब अमित वहाँ कह बैठा, “विष्णुने जब सतीके मृत-शरीरको खण्ड-खण्ड कर डाला तब देश-भरमें जहाँ-तहाँ उनके एक सौसे ज्यादा पीठस्थान बन गये। डिमोंकैसी (प्रजातन्त्र) ने आज जहाँ देखो वहाँ न-जाने कितनी टुकड़ियोंमें ऐरिस्टोंकैसी (कुलीनतन्त्र) की पूजा शुरू करा दी है, टूक-टूक ऐरिस्टोंकैसियोंसे पृथिवी छा गई है। कोई पॉलिटिक्स (राजनीति) में है तो कोई साहित्यमें, तो कोई समाजमें। उनमेंसे किसीमें भी गाम्भीर्य नहीं है, क्योंकि उन्हें अपने पर विश्वास नहीं।”

एक दिन स्त्रियोंपर पुरुषके आधिपत्यके अत्याचारोंके विषयमें कोई समाज-हितैषी अबला-बान्धव पुरुषोंकी निन्दा कर रहा था। अमित मुँहसे सिगरेट अलग करके चटसे कह बैठा, “पुरुषोंके आधिपत्य छोड़ते ही स्त्रियाँ आधिपत्य शुरू कर देंगी। दुर्बलका आधिपत्य बड़ा भयङ्कर होता है।”

सभी अवलाएँ और अबला-बान्धव गरम हो उठे, बोले, “इसके मानी क्या?” अमितने कहा, “जिस पक्षके अधिकारमें साँकल है वह साँकलसे ही चिड़ियोंको बाँधता है अर्थात् जोरसे। और जिसके पास साँकल नहीं है वह बाँधता है अफीम खिलाकर, अर्थात् मायासे। साँकलवाला बाँधता जरूर है, पर भरमाता नहीं। अफीमवाली बाँधती भी है और भरमाती भी। स्त्रियोंकी डिब्बी अफीमसे भरपूर है, और प्रकृति शैतानिन उन्हें मदद पहुँचाया करती है।”

एक दिन इन लोगोंकी बालीगंजकी एक साहित्य-सभामें आलोचनाका मुख्य विषय था ‘रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी कविता’। अमित अपने जीवनमें इसी सभामें पहले-पहल सभापति होनेको राजी हुआ था, और, गया था मन ही मन खुद-सज्जासे सज्जित होकर। एक पुराने जमानेके-से बहुत ही मले-आदमी वक्ता थे। यही प्रमाणित करना उनका उद्देश्य था कि रवीन्द्रनाथकी कविता ‘कविता’ ही है, और कुछ नहीं। दो-एक कालेजके अध्यापकोंके सिवा

अधिकांश सदस्योंने यह बात स्वीकार कर ली कि प्रमाण किसी कदर सन्तोषजनक है ।

सभापतिने उठकर कहा, “कवि मात्रके लिए यह उचित है कि वह पाँच वर्षकी मियादके भीतर-ही-भीतर कविता करे, पचीससे लेकर तीस तक । यह हम हरगिज नहीं कहेंगे कि ‘बादके कवियोंसे हम और भी कुछ अच्छी चीजें चाहते हैं ।’ कहेंगे, ‘हम और-कुछ चाहते हैं ।’ फजली आम निबट जानेपर यह नहीं कहेंगे कि ‘फजलीसे बढ़िया आम लाओ ।’ कहेंगे, ‘नूतनबाजारसे बड़े-बड़े देखकर कुछ शरीफे तो ले आओ ।’ कच्चे नारियलकी मियाद कम ही होती है, वह रसकी मियाद है, और पक्के कड़े नारियलकी मियाद ज्यादा होती है, वह गरीकी मियाद है । कवि होते हैं क्षणजीवी, और दार्शनिककी उमरका कोई ठीक ही नहीं । ... रवीन्द्रनाथके विरुद्ध सबसे बड़ी शिकायत यह है कि हजरत वृद्ध वर्डसवर्थकी नकल करके बहुत ही बेजा तरीकेसे जिन्दा हैं । यमराज बत्ती बुता देनेके लिए रह-रहकर फर्श भेज रहे हैं, फिर भी हजरत कुर्सीका इत्था थामे खड़ेके खड़े ही रह जाते हैं । वे अगर सम्मानके साथ स्वयं ही नहीं हट जाते, तो हमारा कर्तव्य है कि उनकी सभा छोड़कर हम दल बाँधके उठके चले आयें । उनके बाद जो आयेंगे वे भी ताल ठाँकके गरजते-हुए आयेंगे कि उनके राज्यका भी अन्त न होगा । अमरावती बँधी रहेगी मर्त्यलोकमें, उन्हींके दरवाजेपर । कुछ समय तक भक्तगण माला-चन्दन चढ़ायेंगे, भर-पेट खिलायेंगे-पिलायेंगे, साष्टाङ्ग प्रमाण भी करेंगे ; और उसके बाद आयेगा उन्हें बलि देनेका पुण्य-दिवस, अर्थात् भक्ति-बन्धनसे भक्तोंके परित्राणका शुभलग्न । अफ्रीकामें चतुष्पद देवताकी पूजा-पद्धति इसी तरहकी है । द्विपदी, त्रिपदी, चतुष्पदी और चतुर्दशपदी देवताओंकी पूजा भी इसी नियमसे होती है । पूजा-जैसी चीजको एकरस बना देनेके समान अपवित्र अधार्मिकता और-कुछ हो ही नहीं सकती । ... अच्छा लगनेका ऐवोल्यूशन (विकाश) होता है । पाँच साल पहलेका ‘अच्छा लगना’ पाँच साल बाद भी अगर एक ही जगह स्थिर खड़ा रहे तो समझ लेना चाहिए कि बेचारेको मालूम ही नहीं पड़ा है कि वह मर चुका है । जरा-सा धक्का देते ही उसे

इस बातका पता चल जायगा कि सेन्टिमेन्टल (भावुक) आत्मीय जनोंने उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करनेमें देर कर दी थी, शायद यथार्थ उत्तराधिकारीको हमेशाके लिए वञ्चित रखनेके अभिप्रायसे। रवीन्द्रनाथके दलके इस अवैध षड्यन्त्रको पब्लिकके आगे प्रगट कर देनेकी मैंने प्रतिज्ञा की है।”

अपने मणिभूषणने चश्मेकी झलक डालते-हुए प्रश्न किया, “यानी, आप साहित्यमेंसे लाँयट्टी (वफादारी) को उठा देना चाहते हैं ?”

“बिल्कुल ! अबसे यह कवि-प्रेसिडेण्टका शीघ्र-निःशेषित युग शुरू है। रवीन्द्रनाथ ठाकुरके विषयमें हमारा दूसरा वक्तव्य यह है कि उनकी रचना-रेखा उन्हींके हाथके अक्षरोंके^१ समान है, गोल या तरङ्ग-रेखा जैसी, गुलाब अथवा नारी-मुख या चन्द्रमाके ढंगकी। वह प्रिमिटिव (प्रारम्भिक) है, प्रकृतिके हाथके अक्षरोंके समान। नये प्रेसिडेण्टसे हम चाहते हैं कड़ी लाइनकी और खड़ी लाइनकी रचना,—तीरके समान, बरछीके फलके समान, काँटेके समान,—फूल जैसी नहीं, किन्तु बिजलीकी रेखा जैसी, न्युरैलजियाके दर्द जैसी, नुकीली, नुकीले गॉथिक गिरजेके ढंगकी, मन्दिरके मण्डपके ढगकी नहीं,—बल्कि जूट-मिल या सेक्रेटरियेट - बिल्डिंगके ढाँचेकी हो तो भी कोई नुकसान नहीं।—अबसे फेक दो मनको मरमानेवाली वाहियात छन्दवद्धताको। उससे छीन लेना होगा मनको, जैसे रावण छीन ले गया था सीताको। मन अगर रोते-रोते और आपत्ति करते-करते जाय, तो भी उसे जाना ही होगा। अतिवृद्ध जटायु उसे रोकने आयेगा, और उसीमें उसकी मृत्यु होगी। उसके बाद कुछ दिन बीतते ही किष्किन्ध्या जाग उठेगी, और कोई इनुमान सहसा कूदकर लङ्कामें आग लगाके मनको पहलेकी जगह लौटा लानेकी व्यवस्था करेगा। तब फिर होगा टेनिसनके साथ हमारा पुनर्मिलन, बायरनके गलेसे लगकर आँसू बहायेंगे हम ; और डिकेन्ससे कहेंगे कि ‘माफ करो, आरोग्य होनेके लिए ही हमने तुम्हें गालियाँ दी थीं।’ ... मुगल बादशाहोंके समयसे लेकर आज तक देशके तमाम मुग्ध राजगीर मिलकर अगर भारत-भरमें

१ यहाँ क्षीणतासे मतलब है। रवीन्द्रनाथके हस्ताक्षर जैसे सुगोल और सुन्दर हैं वैसे क्षीण (पतली रेखा-युक्त) भी हैं।

जहाँ-तहाँ केवल गुम्बजदार पत्थरके बुद्बुद ही बनाते जाते, तो भद्र-वंशका प्रत्येक आदमी जिस दिन बीस सालकी उमर पार करता उसी दिन वानप्रस्थ लेनेमें देर न करता। ताज-महलको अच्छा-लगानेकी खातिर ही ताज-महलका नशा छुड़ा देना जरूरी है।”

[यहाँ इतना कह रखना जरूरी है कि शब्दोंके स्रोत या वेगको सम्हाल न सकनेके कारण सभाके रिपोर्टरका सर चकरा गया था ; और उसने जो रिपोर्ट लिखी थी वह अमितकी वक्तृतासे भी कहीं ज्यादा अबोध्य हो गई थी। उसीमेंसे जो कुछ टुकड़ोंका उद्धार किया जा सका, उन्हें हमने ऊपर सजाके रख दिया है।]

ताज-महलको पुनरावृत्तिके प्रसङ्गमें रवीन्द्रनाथके भक्त आरक्त मुखसे कह उठे, “अच्छी चीज जितनी ज्यादा हो उतना ही अच्छा है।”

अमितने कहा, “बात ठीक इससे उलटी है। विधाताके राज्यमें अच्छी चीज थोड़ी ही होती है। इसीसे तो वह अच्छी है। नहीं तो, वह अपनी ही भीड़के धक्कोंसे हो जाती साधारण। ... और, जो कवि साठ-सत्तर वर्ष तक जीवित रहनेमें जरा भी लज्जित नहीं होते वे अपने-आपको दण्ड देते हैं अपनेको सस्ता बनाकर। अन्तमें अनुकरणोंका झुण्ड चारों तरफ व्यूह रचकर उन्हें मुँह बिराया करता है। फिर उनकी रचनाओंका चरित्र बिगड़ जाता है,— अपनी पहिलेकी रचनाओंमेंसे चोरी शुरू करके उनकी रचनाएँ हो जाती हैं पूर्व-रचनाओंकी ‘रिसीवर्स ऑफ स्टोलन् प्रॉपर्टी’। ऐसी अवस्थामें लोक-हितकी खातिर पाठकोंका यह कर्तव्य है कि वे इन-सब अति-प्रवीण कवियोंको जीने ही न दें। शारीरिक जीनेकी बात नहीं कह रहा मैं,— मेरा मतलब है उनके काव्यिक जीवनसे। बल्कि, इनकी परमायु लेकर जीते रहें प्रवीण अध्यापक, प्रवीण पॉलिटिशन (राजनीतिज्ञ) और प्रवीण समालोचक।”

उस दिनका एक वक्ता बीचमें ही कह उठा, “क्या मैं जान सकता हूँ कि आप किसे प्रेसिडेंट बनाना चाहते हैं ? कमसे कम उसका नाम तो पेश कीजिये आप !”

अमित चटसे कह बैठा, “निवारण चक्रवर्ती।”

सभाकी अनेक कुरसियोंसे आश्चर्य-भरी आवाज गूंज उठी, “निवारण चक्रवर्ती ! है कौन वह ?”

“आज जो आपलोगोंके मनमें फकत एक सवालका अंकुर-मात्र बना-हुआ है, कल उसीमेंसे जवाबका पेड़ जाग उठेगा।”

“उसके जाग उठनेके पहले कमसे कम उसकी कृतिका कोई नमूना भी तो दिखाइये !”

“तो सुनिये।”— कहते हुए अमितने जेबमेंसे एक पतली लम्बी कैम्बिस की जिल्दवाली कापी निकाली, और पढ़ना शुरू कर दिया :—

• लाया हूँ
अपरिचितका नाम
धरणीमें
परिचित जनताकी सरणीमें ।
हूँ मैं आगन्तुक,
जन-गणेशका प्रचण्ड कौतुक ।
खोलो द्वार,
सन्देश है विधाताका, सुनो सार ।
महाकालेश्वरने
भेजे हैं दुर्लक्ष्य अक्षर,
बोल, है कोई दुःसाहसी यहाँ
बीड़ा मौतका उठाकर
दे जो उसका दुरुह उत्तर ?

नहीं सुना !
खड़ी है सेना मूढ़ताकी
राह रोके ।
व्यर्थ ही क्रुद्ध होके
हुंकारकर पड़ती आ छातीपर ।

तरङ्गोंकी निष्फलता
 नित्य यथा
 मरती सिर धुन-धुनके
 शैल-तटपर,
 आत्मघाती दम्भ भर ।

पुष्पमाला नहीं मेरे, रीता है अन्तस्तल,
 न वर्म है, न अङ्गद है, न कुण्डल ।
 शून्य इस ललाट-पटपर अङ्कित है
 गूढ़ विजय-टीका ।
 फटी गुदड़ी, दरिद्रका वेश ।
 करूँगा निःशेष
 तुम्हारा भण्डार ।
 खोलो, खोलो द्वार ।

अकस्मात्
 बढ़ाया मैंने हाथ,
 जो देना हो, दे दो साथ-साथ ।
 काँप उठा वक्षःस्थल, कम्पित है तेरा अर्गल,
 वसुन्धरा हो रही टलमल ।
 भयसे चीख उठा आर्त
 दिगन्त विदारके,
 “जा, लौट जा अभी,
 रे दुर्दम्य दुर्जन भिखारी,
 तेरी ही कण्ठध्वनि
 घूम-घूम
 निशीथ निद्राके हृदयमें भोंकती पैनी छुरी ।”

लाओ, अस्त्र लाओ ।
 मृनमृनाकर मेरे पञ्जरमें तुम घुसाओ ।
 मृत्युको मारती है मृत्यु, मारने दो,
 अक्षय हैं मेरे प्राण
 कर दूँगा उनका दान ।
 बाँधो मुझे, बाँध लो,
 जंजीरोंमें जकड़ लो,
 तोड़ूँगा एक क्षणमें
 इतनी है शक्ति मनमें ।
 देखना चकित हो,
 तेरी भी मुक्ति है
 मेरी ही मुक्तिमें ।

लाओ, शास्त्र लाओ ।
 करो वार मुक्तपर, आओ ।
 पण्डित पण्डित मिलके
 जोरोंसे हिल - हिलके
 चाहेंगे करना खण्डन
 दिव्य वाणी ।
 नहीं हानी ।
 जानता हूँ
 जितने भी हैं तर्क-वाण
 उनका नहीं परित्राण,
 होकर सब टूँक-टूँक
 सोते रहेंगे मूक ।
 खुलेंगी जीर्ण वाक्योंसे ढकी आँखें जब
 देखोगे प्रकाश तब ।

जलाभो आग अब ।
 आजकी जो है मलाई
 हो भले ही कल बुराई,
 होता है भस्म तो होने दो,
 रोता है विश्व तो रोने दो,
 दूर करो दुःख-शोक ।
 मेरी अग्नि-परीक्षासे
 अपूर्व महा-दीक्षासे
 धन्य हो विश्व-लोक ।

वाणी दुर्बोध मेरी,
 विरुद्ध बुद्धिपर
 मुष्टि-प्रहार कर
 करेगी उसे उच्चकित
 आतङ्कित !
 उन्मत्त ये मेरे छन्द
 देंगे खूब धोखा-धुन्ध
 शान्ति-लुब्ध मुमुक्षुको
 भिक्षा-जीर्ण बुभुक्षुको ।
 पहले तर्क-युद्ध ठान
 पीछे सब लेंगे मान,
 माथेपर ठोंक हाथ,
 पर न कभी एकसाथ ।
 क्रोध - भय - क्षोभमें
 और मानव-लोकमें
 जय, अपरिचितकी जय,
 अपरिचितका है परिचय ।

मेरा वह अपरिचित
 वैशाखी रुद्र धुन्धसे करता धराको आन्दोलित,
 मेघके कार्पण्यको
 मुक्का मार बज्रका
 गुप्त जल-सन्धयको
 छिन्न-विछिन्न कर करता मुक्त विश्वमय ।

रवि ठाकुरका दल उस रोज चुप रह गया । जाते वक्त धमकी दे गया,
 वह लिखके इसका जबाब देगा ।

सारी सभाको बेवकूफ बनाकर मोटरमें बैठके अमित जब घर लौट रहा
 था तब रास्तेमें सिसीने उससे कहा, “जरूर तुम एक बना-बनाया साबुत
 निवारण चक्रवर्ती पहले ही से गढ़कर अपनी जेबमें धर लाये थे, सिर्फ भले
 आदमियोंको बेवकूफ बनानेके लिए ।”

अमितने कहा, “अनागतको जो आदमी आगे ले आता है उसीको कहते
 हैं अनागत-विधाता । मैं वही हूँ । निवारण चक्रवर्ती आज उतर आया है
 मर्त्यलोकमें, समझी ! अब उसे कोई रोक नहीं सकता ।”

सिसी अमितके लिए मन-ही-मन बड़ा-भारी गर्व अनुभव किया करती है ।
 उसने कहा, “अच्छा, अमी, तुम क्या रोज सवेरे उठतेके साथ ही उस दिनके
 लिए अपनी पैनाकर-कढ़ी-जानेवाली बातें तैयार करके रख लिया करते हो ?”

अमितने कहा, “हो-सकनेवाली किसी भी बातके लिए हर वक्त प्रस्तुत
 रहनेका नाम ही सभ्यता है । बर्बरता संसारमें सभी विषयोंमें अप्रस्तुत रहती
 है । यह बात भी मेरी नोट-बुकमें लिखी है ।”

“पर मुश्किल तो यह है कि तुम्हारे पास ‘अपनी राय’ नामकी कोई चीज
 ही नहीं । जब जैसी बात खूब अच्छी सुनाई दे, वही तुम कह डालते हो ।”

“मेरा मन दर्पण है, अपने बँधे-हुए मतोंसे ही हमेशाके लिए यदि उसे मैं
 लीप-पोतकर रख देता, तो उसपर प्रत्येक चालू क्षणका प्रतिविम्ब नहीं पड़ता ।”

सिसीने कहा, “प्रतिविम्ब लिये-लिये ही तुम्हारी जिन्दगी कट जायगी ।”

२-संघात

अमितने बहुत छानबीन करके आखिर शिलांग-पहाड़पर जाना ही तय किया, और गया भी वहीं। कारण, वहाँ उसकी मण्डलीका और कोई नहीं जाता। दूसरा कारण यह भी है कि लड़कीवालोंकी बाढ़ उतनी जोरदार नहीं वहाँ। अमितके हृदयपर जो देवता रात-दिन तीर चलाते रहते हैं उनका आना-जाना फैशनेबुल मुहल्लेमें ही ज्यादा होता है। देशके पहाड़ या पहाड़ियोंपर जितनी भी विलासिताकी बस्तियाँ हैं उनमेंसे इन लोगोंके लिए चाँदमारी करनेकी सबसे तंग जगह है शिलांग।

अमितकी बहनोंने अपना सिर झुकभोरते हुए उससे साफ कह दिया, “तुम जाते हो तो अकेले चले जाओ, हममेंसे कोई नहीं जानेकी।”

बायें हाथमें हाल-फैशनकी नाटी क़तरी, दाहने हाथमें टेनिस-बैट और बदनपर नकली फारसी दुशालेका ‘क्लोक’ (लबादा) पहनकर दोनों बहनें चल दीं दार्जिलिंग। बिमी बोस वहाँ पहलेसे ही जा डटी थी। जब बगैर भाईके सिर्फ बहनोंका ही वहाँ समागम हुआ, तो चारों तरफ देखकर बिमीने आविष्कार किया कि ‘दार्जिलिंगमें जनता है, पर आदमी नहीं।’

अमित प्रायः सबसे कह गया था कि वह शिलांग जा रहा है एकान्तवास करने। पर, दो दिन बीतते-न-बीतते वह समझ गया कि जनता न हो तो एकान्तवासका जायका ही मारा जाता है। कैमरा हाथमें लिये दृश्य देखते फिरनेका शौक नहीं है उसे। उसका कहना है कि ‘मैं विलायती टूरिस्ट या देशी भ्रमण-यात्री नहीं हूँ—मनसे चाखकर खानेकी आदत है मेरी, आँखोंसे निगलकर खानेकी हवस मैं कतई नहीं रखता।’

कुछ दिन तो उसके बीत गये पहाड़की ढालपर देवदार-वृक्षोंकी छायाके नीचे, किताबें पढ़ते-पढ़ते। कहानियोंकी पुस्तक उसने छुई तक नहीं, क्योंकि छुट्टियोंमें कहानियोंकी किताबें पढ़ना सर्वसाधारण लोगोंका कायदा है। वह पढ़ने लगा सुनीति चाटुर्ज्याका लिखा-हुआ ग्रन्थ ‘बंगला भाषाका शब्दतत्त्व’, लेखकके साथ उसका मतभेद होगा इस तीव्र आशङ्काको मनमें लिये-हुए। किन्तु उसके शब्दतत्त्व-ज्ञान और आलस्य-जड़ताकी सँघर्षसे सहसा सुन्दर दिखाई

दे जाते वहाँके वन-जङ्गल और पहाड़-पहाड़ियोंके दृश्य, और साथ ही मनपर वे पूरी तौरसे घने होकर छा भी नहीं जाते। मानो वे किसी रागिनीके एकरस अलाप-जैसे हों, जिनमें न स्थायी है, न ताल है, न सम है। अर्थात् उसमें 'अनेक' तो है किन्तु 'एक' नहीं। इसीसे ठीली चीज बिखर जाया करतो है, इकट्ठी नहीं होती। अमित अपने निखिलके अन्दर 'एक' के अभावमें बार-बार अपनी भीतरी चञ्चलतासे विक्षिप्त हो जाता है। यह दुःख उसका जैसा यहाँ है, वैसा ही शहरमें। परन्तु शहरकी चञ्चलताको वह नानाप्रकारसे क्षय कर डालता है, और यहाँ तो उसमें चाञ्चल्य ही स्थायी होकर जमने लगता है, जैसे झरना रुकावट पाकर तालाब बनके बैठ जाता है। इसीसे जब वह सोच रहा था कि पहाड़की ढालसे उतरकर सिलहट-सिलचरके भीतरसे जहाँ जी चाहे पैदल भाग खड़ा होगा, ठीक उसी समय आषाढ़ आ पहुँचा पहाड़ों और वनोंमें, अपनी सजल घनच्छायाकी चादर धरतीपर लुटाता-हुआ। खबर मिली कि चेरापुञ्जीके पर्वत-शिखरने नव-वर्षके मेघोंके सामूहिक आक्रमणको अपनी छातीपर भेल लिया है; और घन-वर्षण अब निर्भरिणियोंको उन्मत्त करके कूल-हीन तट-हीन कर देगा। उसने तय किया कि ऐसे समय तो कुछ दिनके लिए चेरापुञ्जीके ढाकबंगलेमें जाकर वह ऐसा 'मेघदूत' जमा देगा कि जिसकी अदृश्य अलकापुरीकी नायिका अशरीरी बिजल-सी होगी, जो उसके चित्ताकाशको क्षण-क्षणमें चमकाया करेगी; न तो वह अपना नाम लिखेगी, और न अपना कोई पाता-ठिकाना ही छोड़ जायगी।

उस दिन उसने अपने पाँवोंमें हाइलेण्डरी मोटे ऊनी मोजे चढ़ाये, मोटे सुखतलवाले मजबूत जूते पहने, खाकी नफोंक कुरता पहना, घुटनों तक ओछा हाफ-पैण्ट डट लिया और सिरपर सोलेका टोप दे मारा। देखनेमें अवनीन्द्र ठाकुर द्वारा अङ्कित 'यक्ष' जैसा नहीं हुआ, बल्कि ऐसा मालूम देने लगा जैसे सड़ककी जाँच करने कोई डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर निकल पड़ा हो। किन्तु जबमें थीं पाँच-सातएक पतले एडिशनकी नाना भाषाओंकी काव्यकी पुस्तकें।

टेढ़ी-मेढ़ी पतली सड़क है। दाहिनी तरफ है जङ्गलसे ढकी खाई। इस सड़कका अन्तिम लक्ष्य है अमितका वह मकान जिसमें वह ठहरा-हुआ है।

वहाँ यात्रियोंकी आनेकी सम्भावना कतई नहीं, इसलिए वह आवाज बिना किये ही असावधानीके साथ गाड़ी बढ़ाये चला जा रहा था। ठीक उसी समय वह सोच रहा था, 'आधुनिक कालमें दूर-देशकी प्रेयसीके लिए मोटर-दूत ही सबसे अच्छा है और प्रशस्त भी।' उसमें 'धूमज्योतिःसलिलमरुतां सन्निवेशः' काफी और ठीक नाप-तौलमें है ; और, चातकके हाथमें एक पाती दे देनेसे फिर तो कुछ अस्पष्ट रह ही नहीं जाता। उसने तय कर लिया कि अगले साल 'भाषादके प्रथम दिवस' में ही वह मेघदूत-वर्णित मार्गसे ही मोटरपर यात्रा करेगा। हो सकता है कि अदृष्टने उसकी बाट देखते-हुए 'देहलीदत्तपुष्पा' जिस पथिक-वधूको अब तक बिठा रखा है वह, अवन्तिका हो चाहे मालविका अथवा हिमालयकी कोई देवदारु-वन-चारिणी ही हो, उसे शायद किसी एक अचिन्तनीय मौकेसे दिखाई दे तो दे भी सकती है। इतनेमें सहसा आगेके एक मोड़के पास पहुँचते ही उसने देखा कि एक और गाड़ी ऊपर चढ़ी आ रही है। उस गाड़ीके लिए एक किनारेसे निकलनेकी जगह नहीं थी। ब्रेक कसते-कसते भी गाड़ी जा पड़ी उसके ऊपर। दोनोंको अघात पहुँचा, किन्तु अपघात किसीका नहीं हुआ। दूसरी गाड़ी जरा-सी लुढ़ककर पहाड़से जा लगी और वहीं अटककर रह गई।

एक तरुणी उस गाड़ीसे उतरकर सड़कपर आ खड़ी हुई। सद्यःमृत्युकी आशङ्का का ताजा काला पट अभी तक उसके पीछे मौजूद था, मानो उसीपर वह खिल उठी विद्युत्रेखासे अङ्कित एक साफ-सुथरी तसवीर-सी, चारों ओरके सब-कुछसे बिल्कुल अलग, एकदम निराली। मानो मन्दार-पर्वतसे प्रकम्पित फेनिल समुद्रमेंसे अभी-अभी उठके आई हो स्वयं लक्ष्मी, सम्पूर्ण आन्दोलनोंके ऊपर, और महासागरकी छाती मानो अभी तक फूल-फूलकर काँप रही हो। दुर्लभ अवसरमें ऐन मौकेपर अमितने उसे देखा। किसी ड्राइंग-रूममें यह बाला अन्य पाँच-जनोंके बीच अपने परिपूर्ण आत्म-स्वरूपमें नहीं दिखाई देती।

संसारमें देखने-लायक आदमी तो शायद मिल भी जाता है, किन्तु उसे देखने-लायक ठीक समय और ठीक स्थान नहीं मिलता।

वह पतली किनारीदार सफेद अलवानकी साड़ी और उसी अलवानकी जाकेट पहने थी। पाँवोंमें थीं सफेद चमड़ेकी देशी ढाँचेकी जूतियाँ। देह करकरी और लम्बी, रंग चिकना-साँवला, और आँखें थीं कमान-सी खिंची-हुई, पलकोंकी घनी बरनियोंकी छायासे निविड़ और स्निग्ध। प्रशस्त ललाटको मुक्त किये-हुए पीछेकी ओर खींचकर कसके बँधा-हुआ था जूड़ा, और ठोड़ीको घेरे - हुए सुकुमार मुखड़ेकी गढ़न थी अध-पके फलके समान, रमणीय। जाकिटकी बाहें थीं कलाई तक लम्बी, और दोनों हाथोंमें था सोनेका एक-एक पतला प्लेन कड़ा। ब्रौचके बन्धनसे मुक्त कंधेका पल्ला माथेपर चढ़कर कटकी कामदार चाँदीके काँटेसे जुड़ेके साथ जा बँधा था।

अमितने टोपी खोलकर गाड़ीमें रख दी ; और उसके सामने चुपचाप ऐसे जा खड़ा हुआ जैसे मिलनेवाली सजाका इन्तजार कर रहा हो। देख कर उस लड़कीको शायद दया आ गई, और शायद कुछ कुतूहल भी हुआ।

अमितने मुलायम स्वरमें कहा, “अपराध हो गया मुझसे।”

लड़कीने मुसकुराते-हुए जवाब दिया, “अपराध नहीं, गलती है, और उस गलतीकी शुरुआत मुझसे ही हुई थी।”

लड़कीका कण्ठस्वर भरनेके मूलस्रोतके उत्साह और फुलावके समान परिपूर्ण और सुडौल था, - कम उमरके बालकके गलेकी तरह मुलायम और प्रशस्त। उस दिन घर लौटकर अमित बहुत देर तक सोचता रहा था कि उसके कण्ठस्वरमें जो एक स्वाद है, स्पर्श है, उसका वर्णन कैसे किया जाय ! नोटबुक खोलकर उसने लिखा था, “मानो वह अम्बरी-तम्बाकूका हलका धुआँ हो, पानीके भीतरसे घूमता-हुआ आ रहा हो, उसमें निकोटिनकी उप्रता नहीं, गुलाब-जलकी स्निग्ध सुगन्ध है।”

लड़कीने अपनी त्रुटिकी व्याख्या करते-हुए कहा, “एक मित्रके आनेकी खबर पाकर मैं उन्हें ढूँढ़ने निकली थी। इस रास्तेसे कुछ ऊपर चढ़ चुकनेके बाद, सोफरने कहा कि ‘यह रास्ता नहीं हो सकता।’ मगर तब आखिर तक बिना चढ़े कोई उपाय ही न था, इसीसे ऊपर आ रही थी। इतनेमें ऊपरवालेका धक्का खाना पड़ा।”

अमितने कहा, “ऊपरवालेके ऊपर भी ऊपरवाला है,— एक अत्यन्त कुश्री कुटिल ग्रह । उसीकी करतूत है यह ।”

दूसरे पक्षके डाइवरने कहा, “नुकसान ज्यादा नहीं हुआ,— लेकिन गाड़ी बनकर तैयार होनेमें देर लगेगी ।”

अमितने कहा, “इस मेरी अपराधिनी गाड़ीको अगर क्षमा कर दें तो यह आपको जहाँ आज्ञा देंगी वहीं पहुँचा दे सकती है ।”

“इसकी जरूरत नहीं, पहाड़पर पैदल चलनेकी आदत है मुझे ।”

“जरूरत मुझ ही को है । मुझे माफ कर दिया, इसका सबूत ? —”

लड़की कुछ दुबिधामें पड़कर चुप रह गई । अमितने कहा, “मेरी तरफसे और भी एक बात है । मैं गाड़ी हाँकता हूँ, यह कोई खास महत्त्वका काम नहीं । इस गाड़ीमें चढ़कर पाँस्टैरिटी तक नहीं पहुँचा जा सकता, आगेकी पीढ़ियों तक पहुँचनेका यह रास्ता नहीं । फिर भी, शुरू-शुरूमें यही एकमात्र परिचयपत्र है आपने मेरा । और सो भी, ऐसी तकदीर मेरी कि उसमें भी गलती ! अब उपसंहारमें मुझे इतना तो दिखा देने दीजिये कि संसारमें कम-से-कम आपके सोफरसे तो मैं अयोग्य नहीं ।”

अपरिचितके साथ प्रथम परिचयमें अज्ञात विपत्तिकी आशङ्कासे स्त्रियाँ अपने सङ्कोचको नहीं हटाना चाहतीं । किन्तु, विपत्तिके एक ही धक्केसे उपक्रमणिकाकी लम्बी दीवारका बहुत-सा हिस्सा एकाएक टूटकर गिर गया । मानो दैवने इस सुनसान पहाड़ी रास्तेके बीच अचानक इन दोनोंको खड़ा करके, दोनोंके मनमें दृष्टि-विनिमयकी एक गाँठ बाँध दी, जरा भी सन्न नहीं किया । आकस्मिकके वियुत-प्रकाशमें इस तरह जो-कुछ देखनेमें आया, वह जो बीच-बीचमें रातको जाग उठनेपर अन्धकार-पटपर दिखाई देता रहेगा ! उसकी चेतनापर आजकी घटनाकी गहरी छाप पड़ गई, जैसे नील आकाशपर सृष्टिके किसी-एक प्रचण्ड धक्केसे सूर्य-नक्षत्रकी आगकी-जली छाप लग जाती है ।

मुँहसे कुछ न कहकर वह लड़की चुपचाप गाड़ीमें बैठ गई । और उसके कहे मुताबिक गाड़ी यथासमय यथास्थान जा पहुँची ।

लड़कीने गाड़ीसे उतरकर कहा, “कल अगर आपको समय मिले, तो एक बार यहाँ आइयेगा। मैं अपनी मालिकिन-मासे आपकी जान-पहचान करा दूँगी।”

अमितके मनमें आई कि कह दे, ‘मेरे पास समयकी कमी नहीं है, अभी तुरन्त चल सकता हूँ’, किन्तु संकोचसे वह कह नहीं सका।

घर लौटकर चटसे अपनी नोटबुक उठाकर वह लिखने बैठ गया, “मार्गने सहसा यह कैसा पागलपन कर डाला ! दोनोंको दो जगहसे तोड़ लाकर आजसे शायद दोनोंको एक ही रास्तेसे चालान कर दिया। ऐस्ट्रॉनॉमरने गलत कहा है। अज्ञात आकाशसे चाँद आ पड़ा था पृथ्वीके वातायनमें, लग गया धक्का उनकी मोटरोंमें, उस मौतकी ताड़नाके बादसे युग-युगमें दोनों एक-ही-साथ चल रहे हैं। इसका प्रकाश उसके मुँहपर पड़ता है और उसका प्रकाश इसके मुँहपर। चलनेका बन्धन अब टूटता ही नहीं। मनके भीतरसे कोई कह रहा है, ‘हमारा युगल-चलन शुरू हो गया।’ हम चलनेके सूत्रमें, क्षण-क्षणमें पड़े-पाये उज्ज्वल निमेषोंकी माला गुँथा करेंगे। अब बँधी तनखाकी बँधी-हुई खुराकीपर भाग्यकी चौखटपर पड़ा नहीं रहा जा सकता। हमारा लेन-देन सभी-कुछ सहसा हुआ करेगा।”

बाहर वर्षा हो रही है। बरामदेमें बार-बार चहलकदमी करते-करते अमित मन-ही-मन बोल उठा, ‘कहाँ हो कवि निवारण ! आओ आओ, मेरे सर चढ़कर बोलो। वाणी दो मुझे, वाणी !’ और चटसे उसने अपनी लम्बी पतली-सी कापी निकाल ली। निवारण चक्रवर्ती बोलता गया :—

बन्धनहीन ग्रन्थिने बाँध दिया पथका मन,

चलती हवाके हम दोनों हैं पन्थी-जन।

धूलके दुलारे क्षण, कुङ्कुम गुलाल ढाल,

मदसे उन्मत्त मन, रँगते कपोल लाल,

वर्षाके मेघोंमें उड़के दुपट्टा आज

नाच रही दिगङ्गना पहने रंगीन साज,

लगते ही चकाचौंध
तुरत गया चित्त औंध ।

कनक-चम्पाके कुञ्ज नहीं,
वन-वीथिकामें बिछे नहीं
वकुल - पुञ्ज कहीं ।

सहसा न-जाने कब मधुक्रतुकी रातमें
अज्ञात पुष्प नाम-हीन
मादक सुगन्ध लिये
आया, रहा रात-भर,
होते ही प्रात-काल उपेक्षाकी दृष्टि डाल
प्राचीके अरुण मेघ
उसने कर दिये तुच्छ ।
देखो शाखा-शिखरोंपर
उद्धत हैं रौंडोडेनडून-गुच्छ ।

नहीं धन-रत्नका सन्धय कहीं,
घरके लाड़-प्यारका परिचय नहीं ।
पथके किनारे देख लो उस पेड़पर
चिड़िया नचाती पूँछ,
निश्चय नदारत मूँछ,
न करना कभी पिंजड़ेमें उसे बन्द,
चाहे उड़ना तो उड़ जाय, है सुखन्द ।
डैना पसारे मुक्ति प्रियके गुन गा रही,
राग मुक्तिका सुना रही ।

अब एक बार पीछेकी ओर देख लेना भी जरूरी है । पिछली बातें पूरी
कर ली जायें तो सामने बढ़नेमें कोई रुकावट न आयेगी ।

३- पूर्व-भूमिका

खासकर बंगालमें, अंगरेजी शिक्षाके पहले दौरमें, चण्डीमण्डपकी पुरानी आब-हवाके साथ स्कूल-कालेजकी नई आब-हवाकी गरमीका जो जबरदस्त वैषम्य और संघर्ष दिखाई दिया, उसमें समाज-विद्रोहका एक तूफान-सा उठ खड़ा हुआ, और उसके चंगुलमें फँसना पड़ा ज्ञानदाशङ्करको । वैसे वे पुराने जमानेके ही आदमी थे, परन्तु उनके मामलेकी तारीख सहसा फिसलकर आ पड़ी थी नये जमानेके पास । वे अपनी मियादसे पहले ही पैदा हो गये थे । बुद्धिमें बातचीतमें व्यवहारमें अपनी उमरके लोगोंकी तुलनामें असमसामयिक थे वे । समुद्रकी लहरोंसे खेलनेवाले पक्षीकी तरह लोक-निन्दाके थपेड़े छाती खोलकर सह लेनेमें ही उन्हें आनन्द मिलता था ।

इस तरहके सभी बाबाओंके नाती-पोते जब इस तरहकी तारीख पढ़नेके खिलाफ आवाज उठाकर उसके संशोधनकी कोशिश करते हैं, तो वे एक ही दौड़में पत्राके एकदम उलटी तरफके टर्मिनसमें पहुँच जाते हैं । यहाँ भी वही बात हुई । ज्ञानदाशङ्करके नाती वरदाशङ्कर अपने पिताकी मृत्युके बाद, युगके हिसाबसे, करीब-करीब बाप-दादोंके आदिम पूर्वपुरुष हो उठे । वे मनसादेवीके भी हाथ जोड़ते और शीतलादेवीको भी माता कहकर शान्त रखना चाहते । यहाँ तक कि उन्होंने ताबीज धोकर पानी पीना भी शुरू कर दिया, और एक हजार आठ बार 'दुर्गा' नाम लिखते-लिखते उनका लगभग एक-तिहाई दिन बीत जाता । उनके इलाकेमें जो वैश्य-दल अपना द्विजत्व प्रमाणित करनेके लिए सिर हिलाकर उठके खड़ा हुआ था उसे भी भीतर-बाहर सभी तरफसे विचलित कर दिया गया, और हिन्दुत्वकी रक्षाके उपायोंको विज्ञानके स्पर्श-दोषसे बचानेके लिए भाटपाड़ाके महापण्डितोंकी सहायतासे असंख्य ऋषि-वाक्य पम्पलेटके रूपमें छपाकर उन्हें आधुनिक बुद्धिकी खोपड़ीपर बिना-मूल्य बरसानेमें भी उनकी ओरसे कोई कंजूसी नहीं की गई । बहुत ही थोड़े समयके अन्दर उन्होंने क्रिया-कर्म, जप-तप, आसन-आचमन, स्नान-भ्यान, धूप-धूना और गऊ-ब्राह्मणोंकी सेवासे शुद्धाचारका खूब मजबूत और निश्चिद्र दुर्ग अपने चारों तरफ खड़ा कर लिया । अन्तमें गो-दान, स्वर्ण-दान, भूमि-दान और

कन्या-दान पितृ-दाय मातृ-दाय दूरीकरण आदिके बदलेमें असंख्य ब्राह्मणोंके अशेष आशीर्वाद ग्रहण करके जब वे लोकान्तरकी सिधारे तब उनका उमर थी सिर्फ सत्ताईस सालकी ।

वरदाशङ्करकी स्त्री थीं योगमाया, जो कि उन्हींके पिताके परम मित्र, यानी एकसाथ एक ही कालेजमें पढ़े-हुए और एकसाथ एक ही होटलमें चाँप काटलेट खाये-हुए रामलोचन बनर्जीकी कन्या थीं । जब यह ब्याह हुआ था तब योगमायाके पितृकुलके साथ पतिकुलका वर्णभेद नहीं था । अब तो उनके मायकेकी लड़कियाँ पढ़ती-लिखती भी हैं, बाहर भी निकलती हैं, यहाँ तक कि उनमेंसे किसी-किसीने मासिकपत्रमें सचित्र भ्रमण-वृत्तान्त भी लिखा है । ऐसे घरानेकी लड़कीके शुद्धाचरण और धार्मिक संस्कारोंमें कहीं कोई अनुस्वार-विसर्गकी भी भूल-चूक न रह जाय, इसकी देखभालमें लग गये स्वयं उनके पतिदेव वरदाशङ्कर । सनातन-सीमान्त-रक्षाकी नीतिके अटल शासनसे योगमायाकी गतिविधि विविध पासपोर्ट-प्रणालियों द्वारा नियन्त्रित की जाने लगी । उनका घूँघट उतर आया आँखों तक, बलिक मन तक भी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी । देवी सरस्वती जब किसी अवकाशमें इनके अन्तःपुर में प्रवेश करतीं तब ज्योढ़ीके पदरेपर उन्हें भी नंगामोरी दे अदानी पड़ती थी । उनके हाथकी अंग्रेजी किताबें बाहर ही जलत हो जाती थीं । बंकिम-युग या उसके बादका साहित्य अगर फाटकपर पकड़ जाता, तो वह देहली पार नहीं कर सकता था । योगवाशिष्ठ और रामायणके बंगला-अनुवादोंकी बढ़ियासे बढ़िया जिल्दें योगमायाकी अलमारीमें पड़ी-पड़ी बहुत दिनोंसे प्रतिक्षा कर रही हैं । अवसर-विनोदनके लिए कभी-न-कभी उस विषयकी वे आलोचना करेंगी, ऐसा एक आग्रह इस घरके अधिकारियोंके मनमें अन्त तक बना ही रहा । किन्तु, उस पौराणिक युगके लोहेके सन्दूकके अन्दर अपनेको सेफ-डिपोजिटकी तरह खूब हिफाजतके साथ रख देना योगमायाके लिए आसान नहीं था, फिर भी अपने विद्रोही मनको उन्होंने भरसक अपने काबूमें ही रखा । इस मानसिक धिरावके बीच उनके लिए एकमात्र शरण थे पंडित दीनशरण वेदान्तरत्न, इस घरानेके सभा-पंडित । योगमायाकी स्वाभाविक स्वच्छ बुद्धि

उन्हें बहुत ही अच्छी लगी थी। वे स्पष्ट ही कहा करते थे, “बेटी, यह सब क्रिया-कर्मका जंजाल तुम्हारे लिए नहीं है। जो लोग मूढ़ हैं वे सिर्फ अपने आपको ही ठगते हों सो बात नहीं, बल्कि, दुनिया-भरका सभी-कुछ उन्हें ठगता रहता है। तुम क्या समझती हो कि हम इन शास्त्रोंकी बातपर पूरा विश्वास करते हैं ? देखती नहीं तुम, विधान देते समय हमलोग आवश्यकता समझकर शास्त्र-विधानको व्याकरणके दाँव-पेचसे उलटने-पलटनेमें कोई खास दुःख अनुभव नहीं करते ? इसके मानी यह हुए कि मनके भीतर हम बन्धन नहीं मानते, बाहरसे-हमें मूढ़ बनना पड़ता है मूढ़ोंकी खातिर। तुम खुद जब कि अपनेको भुलावेमें नहीं डालना चाहती तो तुम्हें भरमानेका काम हमसे कैसे हो सकता है ! जब भी कभी तुम्हारी इच्छा हो समझने-जाननेकी तभी तुम मुझे बुलवा लिया करना, बेटी। मैं जिसे सत्य समझता या जानता हूँ वही तुम्हें शास्त्रोंमेंसे सुना जाया जाऊँगा।”

किसी-किसी दिन वे स्वयं इनके घर आकर योगमायाको कभी ‘गीता’ और कभी ‘ब्रह्माभ्यास’ मेंसे व्याख्या करके समझा जाते। योगमाया कभी-कभी बुद्धि-पूर्वक ऐसे-ऐसे प्रश्न करती कि वेदान्तरत्न महाशय पुलकित हो उठते। योगमायाके साथ आलोचना करनेमें उनके उत्साहकी सीमा न रहती। वरदाशङ्करने योगमायाके चारों तरफ छोटे-बड़े जितने भी गुरु और गुरुतरोंको जुटा रखा था, उनके प्रति वेदान्तरत्न महाशयको बड़ी-भारी अवज्ञा थी। वे योगमायासे कहा करते थे, “बेटी, सारे शहरमें केवल एक तुम्हारे ही साथ बात करके मैं सुखी होता हूँ। तुमने मुझे आत्म-धिकारसे बचा लिया।”

इस प्रकार, पञ्चाङ्गमें वर्णित व्रत-उपवास आदिकी जंजीरसे बँधे-हुए बिना-छुट्टीके दिन किसी कदर कट गये। शुरूसे आखिर तक उनका साराका सारा जीवन ऐसा हो उठा, जिसे आजकलकी विचित्र बंगला अखबारों भाषामें कहा जा सकता है ‘बाध्यता-मूलक’।

पतिकी मृत्युके बाद ही योगमाया अपने पुत्र यतिशङ्कर और पुत्री सुरमाको लेकर बाहर निकल पड़ीं। अब वे जाइयोंमें रहती हैं कहकते, और गरमियोंमें चली जाती हैं किसी ठण्डे पहाड़पर। यतिशङ्कर अभी कालेजमें पढ़ रहा है,

किन्तु सुरमाको पढ़ाने-लायक कोई कन्या-विद्यालय पसन्द न आनेसे उन्होंने बड़ी खोजके बाद लावण्यलताको ढूँढ़ निकाला है। और उसी लावण्यके साथ आज सवेरे अचानक अमितकी भेंट हो गई।

४-लावण्यका इतिहास

लावण्यके बाप अवनीश दत्त उत्तर-प्रदेशमें किसी कालेजके प्रिन्सिपल थे। मातृहीन लड़कीको उन्होंने इस तरह पाल-पोसकर बड़ा किया था कि बहुत परीक्षा पास करनेकी माजा-घसी भी उसकी विद्या-बुद्धिको कोई नुकसान नहीं पहुँचा सकी। यहाँ तक कि अब भी उसका पढ़नेका अनुराग प्रबल है।

बापको एकमात्र शौक था विद्याका, और लड़कीमें उनका वह शौक सम्पूर्णतः परितृप्त हो गया। वे अपनी लाइब्रेरीसे भी लड़कीको ज्यादा प्यार करते थे। उनका ऐसा विश्वास था कि ज्ञानकी चर्चसे जो मन ठोस हो जाता है, फिर वहाँ ऐसी दरारें रह ही नहीं जातीं जहाँसे उड़नेवाली चिन्ताकी गैस ऊपर उठ सके। ऐसे आदमीके लिए ब्याह करनेकी जरूरत नहीं होती। उनकी यह भी धारणा थी कि उनकी लड़कीके मनमें पति-सेवाके आबाद होने लायक जो नरम जमीन बाकी रह सकती थी वह गणित और इतिहासकी सीमेन्टसे पकी हो गई है, और खूब मजबूत पक्के मनके लिए यह कहा जा सकता है कि बाहरसे चोट या खरोंच लगनेसे उसपर दाग नहीं पड़ सकता। उन्होंने यहाँ तक सोच रखा था कि लावण्यका ब्याह न हुआ तो न सही, पाण्डित्यके साथ ही हमेशाके लिए उसका गठबन्धन हुआ रहे तो क्या बुराई है।

उनके और भी एक स्नेहका पात्र था। उसका नाम है शोभनलाल। कम उमरमें पढ़नेकी तरफ इतना ध्यान और-किसीमें देखनेमें नहीं आता। प्रशस्त ललाट, आँखोंमें भावोंकी स्वच्छता, ओठोंके भावमें सौजन्य, हँसीके भावमें सरलता और मुँहके भावमें सुकुमारता ऐसी है कि उसका चेहरा देखते ही मन उसकी तरफ खिंच ही जाता है। लड़का निहायत मुँहचोर है, उसकी तरफ जरा-सा ध्यान देते ही वह व्यग्र-सा हो उठता है।

वह गरीबका लड़का है, और त्वात्रवृत्तिकी सीढ़ियोंके सहारे दुर्गम परीक्षाके शिखर पार करता-हुआ आगे बढ़ रहा है। भविष्यमें शोभनलाल अपना नाम कर सकेगा, और उस ख्यातिको गढ़के तैयार करनेवाले कारागरोँकी सूचीमें अवनीशका नाम सबसे ऊपर रहेगा, इस बातका गर्व अध्यापकके मनमें मौजूद था। शोभन उनके घर पाठ लेने आया करता था, और उनकी लाइब्रेरीमें उसका अबाध सञ्चरण था। लावण्यको देखकर वह मारे सङ्कोचके गड़-गड़ जाता। सङ्कोचके इस अति-दूरत्वके कारण ही लावण्यके लिए अपने-आपको शोभनलालसे बढ़ा करके देखनेमें कोई बाधा नहीं थी। दुबिधामें पड़कर जो पुरुष यथेष्ट जोरके साथ अपनेको प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, स्त्रियाँ उसे यथेष्ट स्पष्टतासे प्रत्यक्ष नहीं करतीं।

सहसा एक दिन शोभनलालके बाप नवनीगोपाल अवनीशके घरपर चढ़ाई करके उन्हें खूब एक चोट खरी-खोटी जली-कटी सुना गये। शिकायत यह थी कि 'अवनीशने अपने घरमें पढ़ानेका बहाना करके ब्याहके लिए लड़का फाँसनेका जाल बिछा रखा है, वे वैद्य-जातिके लड़के शोभनलालकी जात बिगाड़ कर समाज-सुधारका शौक भिटाना चाहते हैं।' इस अभियोगके प्रमाणस्वरूप उन्होंने पेन्सिलसे अङ्कित लावण्यलताकी एक तसवीर पेश की। तसवीर बरामद हुई थी शोभनलालके टीनके ट्रङ्कमेंसे, उसमें वह गुलाबकी पंखड़ियोंसे ढकी पड़ी थी। नवनीगोपालको इसमें जस भी सन्देह नहीं था कि यह चित्र लावण्यकी तरफसे प्रणयका दान है। पात्रके हिसाबसे शोभनलालका बाजार-भाव कितना ऊँचा है, और, और-कुछ दिन सब्र किये बैठे रहनेसे वह कीमत और कितनी ज्यादा बढ़ जायगी, यह बात नवनीगोपालके हिसाबी दिमागमें आना-पाईके हिसाबसे मिली-मिलाई रखी थी। ऐसी कीमती चीजपर अवनीश मुफ्तमें ही दखल जमानेका फन्दा डाल रहे हैं, इसे सेंध मारकर चोरी करनेके सिवा और क्या नाम दिया जा सकता है? धन-दौलतकी चोरी और इस चोरीमें लेशमात्रका फर्क है कहाँ? अब तक लावण्यलताको इस बातका पता ही न था कि किसी छिपी हुई वेदीपर श्रद्धाहीन लोक-दृष्टिके आगोचरमें उसकी मूर्ति-पूजा प्रचलित हो गई है। अवनीशकी लाइब्रेरीके एक कोनेमें नाना

प्रकारके पैम्पलेट मैगनिज आदिके कूड़े-करकटमें, सम्हालकी कमीसे मलिन, लावण्यलताका एक फोटोग्राफ देवसे शोभनलालके हाथ पड़ गया था। और उससे उसने अपने किसी आर्टिस्ट मित्रके हाथसे एक कला-पूर्ण चित्र बनवा लिया था, और उस फोटोग्राफको फिर जहाँका तहाँ रख दिया था। और गुलाब-फूल भी उसके तरुण मनके सलज्ज गुप्त प्रेमकी तरह ही सहज-स्वाभाविक रूपसे खिले थे उसके एक मित्रके बगीचेमें। उसमें किसी अधिकारके औद्धत्यका कोई इतिहास नहीं था। फिर भी सजा उसे भुगतनी ही पड़ी। बेचारा लाजुक लड़का शोभन सिर झुकाये, सुख चेहरा लिये, छिपाकर अपने आँसू पोंछता-हुआ इस घरसे विदा हो गया। दूरसे उसने अपने आत्म-निवेदनका एक शेष परिचय दिया, और उसका विवरण सिवा एक अन्तर्यामीके और कोई जान ही न सका। बी०ए० की परिक्षामें जब कि उसने प्रथम स्थान पाया था, लावण्यने तब तृतीय स्थान प्राप्त किया था। इस घटनाने लावण्यको बहुत ज्यादा आत्म-लघुताका दुःख दिया। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि शोभनलालकी बुद्धिपर अवनीशकी अत्यन्त श्रद्धा थी, जिसने लावण्यको बहुत दिनों तक चोट पहुँचाई थी। श्रद्धाके साथ अवनीशका विशेष स्नेह घुल-मिल जानेसे उसकी व्यथा और भी बढ़ गई थी। परीक्षा-फलमें शोभनसे आगे बढ़ जानेके लिए उसने जी-जानसे खूब कोशिश की थी। फिर भी शोभन जब उससे आगे बढ़ गया, तो उस स्पर्धाके लिए उसे क्षमा करना ही उसके लिए कठिन हो गया। लावण्यके मनमें कैसा तो एक सन्देह-सा बना रहा कि उसके पिता शोभनकी खास तौरसे सहायता करते रहते हैं, इसीसे दोनों परीक्षितोंके फलमें इतना फर्क हुआ है। और, मजा यह कि परीक्षाके पाठके विषयमें शोभन किसो भी दिन अवनीशके सामने नहीं गया। कुछ दिन तक तो ऐसा रहा कि शोभनके साथ प्रतियोगितामें लावण्यके जीतनेकी कोई आशा ही नहीं रही। फिर भी उसीकी जीत हुई। और तो और, स्वयं अवनीश भी दङ्ग रह गये। शोभनलाल अगर कवि होता तो शायद वह भर-भर कापी कविता लिखा करता, किन्तु उसके बदले उसने परीक्षा-पास करनेके अपने बड़े-बड़े मार्क-पुष्प लावण्यके लिए उत्सर्ग कर दिये।

उसके बाद, इन दोनोंकी छात्र-अवस्था जाती रही। इतनेमें सहसा अवनीशको अपनी सख्त बीमारीमें, अपने-आपमें ही इस बातका प्रमाण मिल गया कि ज्ञानकी चर्चासे मन ठसाठस भरा रहनेपर भी मनसिज उसीमेंसे कहींसे सारी रोक-थाम हटा-हुटकर उठ खड़ा होता है। उसके लिए वहाँ जरा भी स्थानाभाव नहीं होता। तब अवनीशकी उमर थी सैंतालीस वर्षकी। उस अत्यन्त दुर्बल निरुपाय उमरमें कहींसे एक विधवा उनके हृदयमें प्रवेश कर गई एकदम उनकी लाइब्रेरीके ग्रन्थ-व्यूहको भेदकर, उनके पण्डितकी चारदीवारी को लाँघकर। उससे ब्याह करनेमें और कोई बाधा नहीं थी, सिर्फ एक बाधा थी लावण्यके प्रति उनकी ममता। इच्छाके साथ बड़ी-भारी लड़ाई शुरू हो गई। पठन-पाठन वे खूब जोरके साथ ही करना चाहते, किन्तु ऐसी एक चमत्कारी चिन्ता जिसमें उससे भी ज्यादा जोर था, पठन-पाठनके सर हो जाती। समालोचनाके लिए 'मॉडर्न-रिव्यू' से उनके पास नई-नई लोभनीय पुस्तकें आती रहतीं, बौद्ध-ध्वंसावशेषके इतिहास-सम्बन्धी, किन्तु अनुद्घाटित पुस्तकोंके सामने वे स्थिर बैठे रहते, उस टूटे-फूटे बौद्ध-स्तूपकी तरह जिसे सैकड़ों वर्षोंका मौन टकटकी लगाये देखा करता है। सम्पादक व्याकुल हो उठते, वे नहीं जानते कि ज्ञानीका स्तूपाकार ज्ञान जब हिलता है तब उसकी ऐसी ही दशा हो जाया करती है। हाथी जब दलदलमें कदम रख चुकता है तब उसके बचनेका उपाय क्या है ?

इतने दिन बाद अवनीशके मनको एक तरहका परिताप व्यथा देने लगा। उन्हें मालूम हुआ कि उन्होंने शायद पोथीके पन्नोंसे आँख उठाकर देखनेकी फुरसत न मिलनेसे, यह नहीं देखा कि शोभनलालको उनकी लड़की प्यार करती है। कारण शोभन जैसे लड़केको प्यार न कर सकना ही अस्वाभाविक है। साधारण तौरसे बाप-जातिपर ही उन्हें गुस्सा आया, अपने ऊपर और साथ ही नवनीगोपालपर।

इतनेमें शोभनकी एक चिट्ठी आई। प्रेमचन्द-रायचन्द-छात्रवृत्तिके लिए वह गुप्त-राजवंशके इतिहासके आधारपर निबन्ध लिखकर उसे दाखिल करना चाहता है और उसके लिए उनकी लाइब्रेरीसे उसे कुछ किताबें उधार चाहिए।

उसी समय उन्होंने उसे विशेष आदरके साथ चिट्ठी लिख दी, लिख दिया कि 'पहलेकी तरह ही मेरी लाइब्रेरीमें बैठ कर तुम लिखो-पढ़ो, जरा भी संकोच न करना ।'

शोभनलालका मन चञ्चल हो उठा । उसने समझ लिया कि ऐसी उत्साहप्रद चिट्ठीके पीछे शायद लावण्यकी सम्मति छिपी-हुई है । उसने लाइब्रेरीमें आना शुरू कर दिया । घरमें आने-जानेके मार्गमें दैवदश कभी क्षण-भरके लिए जब लावण्यसे भेंट हो ही जाती तब शोभन अपनी गतिको जरा मन्द कर देता । उसकी अत्यन्त इच्छा रहती कि लावण्य उससे कोई बात करे, पूछे कि 'कैसे हो ?' जिस निबन्धके लिखनेमें वह इतना व्यस्त है उसके बारेमें कुछ दिलचस्पी जाहिर करे । अगर करती तो कापी खोलकर थोड़ी देरके लिए लावण्यके साथ आलोचना करके वह जी जाता । यह जाननेके लिए कि उसके कुछ अपने उद्धावित सिद्धान्तोंके सम्बन्धमें लावण्यकी क्या राय है, उसे अत्यन्त उत्सुकता थी । पर, अभी तक कोई बात ही नहीं हुई, और इतनी उसमें हिम्मत नहीं कि अपनी तरफसे चलाकर कुछ कह सके ।

इसी तरह कई दिन बीत गये । उस दिन रविवार था । शोभनलाल अपने कागजात टेबिलपर रखे-हुए एक किताबके पन्ने उलट रहा था और बीच-बीचमें कुछ नोट करता जाता था । दोपहरका वक्त था, और घरमें कोई था नहीं । छुट्टीके दिनका मौका देखकर अवनीश किसीके घर चले गये थे, जिसका नाम नहीं बता गये, सिर्फ इतना कह गये थे कि आज वे चाय पीने नहीं आयेंगे ।

सहसा किसी समय फिरे-हुए किवाड़ खुल गये । शोभनलालकी छाती धड़क उठी, वह काँप गया । लावण्य कमरेके भीतर चली आई । शोभन घबराकर उठ बैठा, उसकी कुछ समझमें न आया कि वह क्या करे । लावण्य आग-बबूला होकर बोली, "आप क्यों आते हैं इस घरमें ?"—

शोभनलाल चौंक पड़ा, उसकी जबानपर कोई जवाब न आया ।

"आप जानते हैं, यहाँ आनेके बारेमें आपके पिताने क्या कहा है ? मेरा अपमान करानेमें आपको सङ्कोच नहीं होता ?"

शोभनलालने आँखें नीची करके कहा, “मुझे क्षमा कीजिये, मैं अभी चला जाता हूँ।”

उससे ऐसा एक उत्तर तक नहीं दिया गया कि स्वयं उसके पिताने उसे आमन्त्रण देकर बुलाया है। उसने अपने कागजात वगैरह सब इकट्ठे कर लिये। उसके हाथ थर-थर काँप रहे थे, मानो उसके मनकी एक गूँगी व्यथा पसलीकी हड्डियोंको ढकेलकर ऊपर आना चाहती है, किन्तु रास्ता नहीं पाती। सिर झुकाये वह चुपचाप घरसे बाहर चला गया।

जिससे बहुत ही ज्यादा प्रेम किया जा सकता था उससे प्रेम करनेका मौका अगर किसी एक बाधासे टकराकर हाथसे छूटकर गिर जाय, तो वह केवल अप्रेममें ही परिणत नहीं हो जाता किन्तु तब वह एक अन्ध-विद्वेषमें परिणत हो जाता है,—प्रेमका ही दूसरा पहलू है वह। किसी दिन शोभनको वरमाला पहनानेके लिए ही लावण्य अपने अगोचरमें प्रतीक्षा किये बैठी थी। शोभनलालकी तरफसे ही शायद उसका अनुरूप उत्तर नहीं मिला। उसके बाद जो-कुछ हुआ, सब उसके विरुद्ध ही गया। सबसे ज्यादा चोट पहुँची इस आखिरी विदाके समय। लावण्यने अपने मनके क्षोभमें आकर पिताके प्रति बहुत ही ज्यादा अन्याय किया। उसे ऐसा लगा कि उसके पिताने स्वयं छुटकारा पा जानेके खयालसे ही अपनी तरफसे जान-बूझकर शोभनलालको फिरसे बुलाया है, उन दोनोंमें मेल करानेकी कामनासे, और इसीसे ऐसा निष्ठुर क्रोध आ पड़ा बेचारे निरपराध शोभनलालपर।

इसके बाद फिर लावण्यने लगातार जिद कर-करके अवनीशका ब्याह करा दिया। अवनीशने अपने सखित धनका लगभग आधा हिरसा अपनी लड़कीके लिए अलग कर रखा था। पिताके ब्याहके बाद लड़की कह बैठी कि वह पिताकी सम्पत्तिमेंसे कुछ भी नहीं लेगी, स्वाधीनतासे कमाकर अपना गुजर करेगी। अवनीशने मर्माहत होकर कहा, “मैंने तो ब्याह करना नहीं चाहा था, लावण्य, तुम्हींने तो जिद करके यह ब्याह कराया है। तो फिर आज क्यों तुम मुझे इस तरह त्याग रही हो?”

लावण्यने कहा, “हम दोनोंका सम्बन्ध क्षुण्ण न हो इसीलिए मैंने ऐसा

सङ्कल्प किया है। तुम कुछ चिन्ता मत करो, बापूजी। जिस मार्गमें वास्तवमें मैं सुखी होऊँ उसी मार्गपर हमेशा तुम अपना आशीर्वाद बनाये रखना।”

काम उसे मिल गया। सुरमाको पढ़ानेका पूरा भार उसीपर है। यतिशङ्करको भी आसानीसे पढ़ा सकती थी वह, पर, महिला-शिक्षयित्रीसे पढ़नेका अपमान स्वीकार करनेको यतिशङ्कर किसी तरह राजी नहीं हुआ।

प्रतिदिनके बैठे-हुए काममें उसका जीवन किसी तरह चला जा रहा था। बचा-हुआ समय ठसाठस भरा-हुआ था अंगरेजी साहित्यसे, प्राचीन कालसे शुरू करके हालके बर्नर्ड शॉके युग तक, और खासकर ग्रीक और रोमन युगके इतिहास और प्रोट, गिबन और गिलबर्ट मरेकी रचनाओंसे। किसी-किसी अवकाशमें एक चञ्चल हवा आकर उसके मनके भीतर थोड़ा-बहुत उथल-पुथल न कर जाती हो ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, पर उस हवासे बढ़कर कोई स्थूलतर व्याघात सहसा उसके भीतर घुस आ सके इतना बड़ा छिद्र उसकी जीवनयात्रामें शायद नहीं था। होनहारकी बात कि ठीक इसी समय व्याघात आ पड़ा मोटर-गाड़ीमें बैठे-बैठे, बीच रास्तेमें चलते-चलते, कोई आइट तक बगैर किये। सहसा ग्रीस-रोमका विराट इतिहास हलका हो गया, और, सब कुछको हटाकर बहुत ही निकटके एक निविड़ वर्तमानने उसे झकझोरकर कहा, “जागो !” लावण्य एक ही क्षणमें जाग उठी, और इतने दिनों बाद अपनेको देख सकी,—ज्ञानमें नहीं, वेदनामें।

५—परिचयका आरम्भ

अतीतके भग्नावशेषसे अब हमें लौट चलना चाहिए वर्तमानकी नवीन सृष्टिके क्षेत्रमें।

लावण्य अपने पढ़नेके कमरेमें अमितको बिठाकर योगमायाको खबर देने चली गई। उस कमरेमें अमित ऐसे बैठ गया जैसे कमलके बीच भौंरा आ बैठा है। वह चारों ओर देखता है तो सभी चीजोंसे एक तरहका स्पर्श-सा आ लगता है उसके मनपर, और वह उसे उदास कर देता है। अलमारीमें और पढ़नेकी टेबिलपर उसने अंग्रेजी साहित्यकी पुस्तकें देखीं, उसे ऐसा लगा

जैसे वे जिन्दा हो उठी हों। ये सब लावण्यकी पढ़ी-हुई पुस्तकें हैं। उसकी उंगलियोंने इनके पन्ने उलटे हैं, दिन-रात इनमें उसकी विचारधारा बहा करती है, उसकी उत्सुक दृष्टि चला-फिरा करती है इनपर, और अन्यमनस्क दिनोंमें ये उसकी गोदमें पड़ी रहती हैं। टेबिलपर उसने जब अंगरेज कवि डॉनका काव्य-संग्रह पड़ा देखा तो वह चौंक उठा। ऑक्सफोर्डमें रहते-हुए डॉन और उनके समयके कवियोंके गीति - काव्य अमितके प्रधान आलोच्य विषय थे। यहाँ आज इस काव्यपर दैवसे दोनोंके मनोंने एक जगह आकर परस्परको स्पर्श किया।

बहुत दिनोंसे निरुत्सुक दिन-रातोंके दाग लग-लगकर अमितका जीवन धुँधला-सा हो गया था ; मानो वह मास्टरके हाथकी स्कूलमें हर साल पढ़ाई जानेवाली ढीली जिल्दकी पाठ्य-पुस्तक हो। आनेवाले दिनके लिए उसमें कोई कुतूहल नहीं था और मौजूदा दिनका पूरे मनसे स्वागत करना उसे अनावश्यक जान पड़ता था। अब वह, मानो एक नये ग्रहमें आ पहुँचा है। यहाँ वस्तुका भार कम है, पैर जमीन छोड़कर मानो अधर चल रहे हों, प्रतिक्षण व्यग्र होकर अचिन्तनीयोंकी तरफ बढ़ते जा रहे हों। देहसे हवा लगती और सारी देह मानो बाँसुरी हो जाना चाहती है। आकाशका प्रकाश मानो रक्तमें प्रवेश करता और भीतर-ही-भीतर उसमें ऐसी एक उत्तेजनाका सञ्चार होता जिसे वृक्षके सर्वाङ्ग-प्रवाहित रसमें फूल खिलानेकी उत्तेजना कहा जा सकता है। मनके ऊपरसे न-जाने कितने दिनोंका धूल-भरा परदा उठ गया, साधारण चीजमेंसे एक असाधारणता खिल उठी। इसीसे, योगमायाने जब धीरे-धीरे घरमें प्रवेश किया तब उस बिककुल स्वाभाविक बातमें भी अमितको आज विस्मय मालूम हुआ। उसने मन-ही-मन कहा, 'अहा, यह तो आगमन नहीं, आविर्भाव है !'

चालीसके करीब उनकी उमर है, किन्तु उमरने उन्हें शिथिल नहीं किया, किन्तु केवल एक गम्भीर शुश्रूता ही दान की है। गोरा भरा-हुआ चेहरा है और वैधव्य-रीतिसे छँटे-हुए हैं माथेके बाल ; मातृभावसे भरी परिपूर्ण प्रसन्न आँखें हैं और उसमें है स्निग्ध हँसी। मोटी सफेद चादर माथेको वेष्टन करती-हुई सारे शरीरको ढके-हुए है। पाँवोंमें जूते नहीं, दोनों पाँव निर्मल

और सुन्दर हैं। अमितने पाँव छूकर जब उन्हें प्रणाम किया तो उसकी नस-नसमें मानो देवीके प्रसादकी धारा बह निकली।

प्रथम परिचयके बाद योगमायाने कहा, “तुम्हारे काका अमरेश थे हमारे जिलेके सबसे बड़े वकील। एक दफे एक सत्यानासी मुकदमेमें हमलोग फकीर होने जा रहे थे, उन्होंने हमें बचा लिया। मुझे वे ‘भाभी’ कहा करते थे।”

अमितने कहा, “मैं उनका अयोग्य भतीजा हूँ। काकाने नुकसानसे बचा लिया था और मैंने नुकसान कर दिया। आप थीं उनकी ‘मुनाफेकी भाभी’, और मेरी होंगी ‘नुकसानकी मौसी’।”

‘योगमायाने पूछा, “तुम्हारी मा हैं ?”

अमितने कहा, “थीं, और मौसीका होना भी अत्यन्त उचित था।”

“मौसीके लिए इतना खेद क्यों, बेटा ?”

“आप ही सोचिये न ! आज अगर माकी गाड़ी तोड़ देता तो उनकी डाट-फटकारकी सीमा न रहती। कहतीं, यह गधापन है। और गाड़ी अगर मौसीकी होती तो वे मेरी अपटुता देखकर हँस देतीं और मन-ही-मन कहतीं, लड़कपन है।”

योगमायाने कहा, “तो फिर गाड़ी मौसीकी ही सही।”

अमित उठल पड़ा। और योगमायाके पाँव छूकर बोला, “इसीलिए तो पूर्वजन्मका कर्मफल मानना पड़ता है। माकी कोखमें जन्म लिया है, किन्तु मौसीके लिए तो कोई तपस्या ही नहीं करनी पड़ी। हालाँकि गाड़ी तोड़नेको सत्कर्म नहीं कहा जा सकता, किन्तु एक ही क्षणमें देवताके वरकी तरह जीवनमें मौसी तो मिल गई। इसके पीछे कितने युगोंका संकेत है, जरा सोचिये !”

योगमायाने हँसकर कहा, “पर, कर्मफल किसका, बेटा ? तुम्हारा या जो मोटर-मरम्मतका रोजगार करते हैं उनका ?”

अपने घने बालोंमें पीछेको ओर उंगलियाँ चलाते-हुए अमितने कहा, “बड़ा कड़ा सवाल है यह। कर्म अकेलेका नहीं, सारे विश्वका है। एक नक्षत्रसे दूसरे नक्षत्रमें उसकी सम्मिलित धारा युग-युगसे चलकर शुक्रवारको ठीक नौ बजेके अड़तालीस मिनटपर लगा एक धक्का। उसके बाद ?”

योगमाया लावण्यकी तरफ कनखियोंसे देखकर जरा हँस दीं। अमितके साथ काफी परिचय होते-न-होते ही वे तय कर बैठीं कि इन दोनोंका ब्याह होना ही चाहिए। और, इसी बातको ध्यानमें रखकर उन्होंने कहा, “बेटा, तुम दोनों यहाँ बैठे बातचीत करो, तब तक मैं तुम्हारे खाने-पीनेका इन्तजाम कर आऊँ।” और वे भीतर चली गईं।

तेज तालसे बातचीत जमानेकी शक्ति है अमितमें। उसने चटसे शुरू कर दिया, “मौसीजीने हमलोगोंको बातचीत करनेकी आज्ञा दे दी है। शुरू होना चाहिए नामसे, पहले उसको पक्का कर लेना होगा। आप मेरा नाम तो जानती हैं-न, अंग्रेजी व्याकरणमें जिसे प्रॉपर-नेम कहते हैं?”

लावण्यने कहा, “मैं तो जानती हूँ आपका नाम अमित बाबू है।”

“पर, यह नाम ~~सब~~ क्षेत्रोंमें नहीं चलता।”

लावण्यने हँसकर कहा, “क्षेत्र अनेक हो सकते हैं, पर अधिकारीका नाम तो एक ही होना चाहिए।”

“आप जो बात कह रही हैं वह इस जमानेकी बात नहीं है। देश काल पात्रमें भेद हो और नाममें कोई भेद न हो, यह अवैज्ञानिक है। मैंने तय किया है नामोंकी आपेक्षिकताका प्रचार करके मैं नामवर होऊँगा। उसके प्रारम्भमें ही जता देना चाहता हूँ कि आपके मुँहसे मेरा नाम ‘अमित-बाबू’ न होगा।”

“आप साहबी कायदा पसन्द करते हैं? — मिस्टर रॉय।”

“एकदम समुद्रके उस पारका बहुत दूरका नाम है यह। नामका फासला ठीक करनेके लिए नापके देखना चाहिए कि शब्दको कानके तोरण-द्वारसे मनके अन्तःपुर तक पहुँचनेमें कितनी देर लगती है।”

“आखिर वह द्रुतगामी नाम है कौन-सा, सुनाइये भी तो?”

“द्रुतगमनके लिए बोझ घटाना होगा अमितबाबूके ‘बाबू’को निकाल दें।”

लावण्यने कहा, “आसान नहीं, समय लगेगा।”

“समय सबके लिए समान नहीं लगना चाहिए। ‘एक-घड़ी’ नामकी कोई चीज नहीं, ‘जेब-घड़ी’ जरूर है, और जेबके माफिक ही उसकी चाल होती है। आइन्स्टाइनका यही मत है।”

लावण्य उठके खड़ी हो गई, बोली, “किन्तु आपके नहानेका पानी ठण्डा हुआ जा रहा है।”

“ठण्डे पानीको मैं शिरोधार्य कर लूँगा अगर बातचीतके लिए और भी जरा समय दें।”

“समय अब नहीं है।” — कहकर लावण्य भीतर चली गई।

किन्तु अमित उसी समय उठकर नहाने नहीं गया। लावण्यकी मन्द-मन्द मुसकराहट उसके प्रत्येक शब्दपर कैसा लालित्य और कैसा माधुर्य बरसा रही थी, बैठा-बैठा उसीकी याद करने लगा। उसने बहुतसी सुन्दरी लड़कियोंको देखा है, उनका सौन्दर्य पूर्णोंकी रातकी तरह उज्ज्वल होते हुए भी आच्छन्न-सा है। किन्तु, लावण्यका सौन्दर्य प्रातःकालके समान प्रसन्न और ताजा है, उसमें अस्पष्टताका मोह नहीं; मानो उसका सब-कुछ बुद्धिसे परिव्याप्त है। विधाताने उसे स्त्रीके रूपमें गढ़ते समय उसमें थोड़ा-सा पुरुषका भाग भी मिला दिया है। उसे देखते ही ऐसा मालूम होता है कि उसमें केवल वेदनाकी ही शक्ति नहीं, बल्कि साथ-साथ मननकी भी शक्ति है। और खासकर इसी बातने अमितको इस तरह आकर्षित किया है। अमितमें बुद्धि है किन्तु क्षमा नहीं, विचार है किन्तु धैर्य नहीं। उसने बहुत-कुछ जाना है, सीखा है, किन्तु शान्ति नहीं पाई। लावण्यके चेहरेपर उसने ऐसा एक शान्तिका रूप देखा है जो हृदयकी तृप्तिसे नहीं किन्तु उसकी विवेचना-शक्तिकी भग्भीरतासे अचञ्चल है।

६—नया परिचय

अमित मिलनसार और गपशप-पसन्द आदमी है। प्रकृतिके सौन्दर्यसे उसका ज्यादा देर तक काम नहीं चल सकता। हमेशा कुछ-न-कुछ बकते रहना उसकी आदतमें शुमार है। पेड़-पौधों और पहाड़-पहारियोंके साथ हँसी-मजाक नहीं चल सकता। उनके साथ किसी तरहका उलटा व्यवहार करनेसे मार खानी पड़ती है, क्योंकि वे खुद नियमसे चलते हैं और दूसरोंसे भी नियमकी पाबन्दी चाहते हैं। एक वाक्यमें कहा जाय तो यों कहना

चाहिए कि वे अरसिक हैं। और यही वजह है कि शहरके बाहर अमितका जो हाँफने लगता है।

किन्तु अचानक न-जाने क्या हो गया कि शिलाँग-पहाड़ चारों तरफसे अमितको अपने रसमें पागे ले रहा है। आज वह सूर्योदयके पहले ही उठा है, और यह उसके स्वधर्मके विरुद्ध है। खिड़कीमेंसे देखा, देवदारके पेड़की झालरें काँप रही हैं; और उसके पीछे पतले बादलोंके ऊपरसे, पहाड़के उस पारसे, सूर्यने मानो अपनी कूचीसे लम्बी-लम्बी सुनहली रेखाएँ खींच दी हैं। आगमें-जले रंगोंकी जो आभाएँ खिल उठी हैं उनके सम्बन्धमें चुप रहनेके सिवा और कोई उपाय नहीं।

फटपट एक प्याला चाय पीकर अमित घरसे निकल पड़ा। रास्ता तब बिल्कुल सुनसान था। एक बहुत ही पुराने काई-शुदा पाइनके पेड़के नीचे स्तर-स्तरमें झड़े-हुए पत्तोंके बिस्तरपर वह पैर फौलाके बैठ गया। एक सिगरेट सुलगाकर बहुत देरतक उसे वह दो उंगलियोंके बीच दबाये रहा, कश लगाना ही भूल गया।

योगमायाके मकानके रास्तेमें यह जंगल पड़ता है। ज्योनारमें बैठनेके पहले रसोई-घरसे जैसे पकवानोंकी पेशगी महक मिला करती है, ठीक वैसे ही इस जगहसे अमित योगमायाके घरका सौरभ भोगा करता है। समय घड़ीके भद्र दागपर पहुँचते ही वह उनके यहाँ जाकर एक प्याला चायकी माँग पेश करेगा। पहले वहाँ जानेका उसका समय निर्धारित था शामको। साहित्य-रसिक होनेकी ख्यातिके सहरसे उसे आलोचनाके लिए वहाँ स्थायी निमन्त्रण मिल गया था। शुरू-शुरूमें दो-चार दिन तो योगमायाने इस आलोचनामें अपना उत्साह प्रकट किया था, किन्तु बादमें योगमायाको भास गया कि इससे इस पक्षके उत्साहको कुछ बाधा ही पहुँचती है। यह समझना कठिन नहीं कि इसका कारण है द्विवचनकी जगह बहुवचनका प्रयोग। इसके बादसे योगमायाके अनुपस्थित रहनेके कारण बार-बार आते ही रहते हैं। जरा-सा विश्लेषण करते ही समझ लिया गया कि वे कारण अनिवार्य नहीं, दैवकृत भी नहीं, इच्छाकृत हैं, और यह प्रमाणित हो गया कि माताजीने इन दोनों

आलोचना-परायणोंमें जो अनुराग देखा है वह साहित्यानुरागसे जरा-कुछ विशेष गाढ़ा है। अमितने समझ लिया कि मौसीकी उमर जरूर कुछ ज्यादा हो गई है, पर दृष्टि तीक्ष्ण है, और साथ ही मन बना-हुआ है सुकोमल। इसीसे आलोचनाका उत्साह उसका और भी प्रबल होता जाता है। निर्दिष्ट समयको प्रशस्ततर करनेके अभिप्रायसे यतिशङ्करके साथ उसने समझौता कर लिया कि उसे वह सवेरे एक घण्टे और शामको दो घण्टे अंग्रेजी साहित्य पढ़ानेमें उसकी सहायता किया करेगा। और शुरू कर दी सहायता, इतने बाहुल्यके साथ कि अकसर सवेरा ढुलक जाया करता दोपहर तक और सहायता लुढ़क जाया करती फालतू बातोंमें, और अन्तमें, योगमाया और भद्रताके अनुरोधसे दोपहरका खाना जरूरी कर्तव्यमें शामिल हो जाता। इस तरह देखा जाना कि जरूरी कर्तव्यकी परिधि पहर-पहरमें क्रमशः बढ़ती ही जाती है।

यतिशङ्करको पढ़ानेकी बात थी सवेरे आठ बजे। पर उसकी प्रकृतिस्थ अवस्थाके लिए वह था असमय। उसका कहना था, 'जिस जीवकी गर्भ-वासकी मियाद दस महीने है उसके सोनेकी मियाद पशु-पक्षियोंके मापसे नहीं मिल सकती।' अब तक अमितके रातके समयने उसके सवेरेके बहुतसे घण्टोंको समेटके बगलमें दबा रखा था। उसका कहना है, 'यह चुराया-हुआ समय अवैध होनेके कारण ही नींदके लिए सबसे ज्यादा अनुकूल है।'

किन्तु आजकल उसकी नींद विशुद्ध नहीं रही। उसके अन्दर अब जल्दी उठनेका आग्रह बना रहता। आवश्यकताके पहले ही नींद खुल जाती और फिर करवट बदलकर सोनेकी हिम्मत नहीं होती, इस डरसे कि कहीं देर न हो जाय। बीच-बीचमें उसने घड़ीका काँटा आगे बढ़ा दिया है, पर समयकी चोरीका अपराध कहीं पकड़ा न जाय, इस डरसे बार-बार ऐसा करना सम्भव न हुआ। आज एक बार उसने घड़ीकी तरफ देखा, देखा कि दिन अभी सात बजेके इसी पार है। उसे ऐसा लगा कि घड़ी जरूर बन्द पड़ी है। पर घड़ी कानसे लगाई तो टिकटिक शब्द सुनाई दिया।

इतनेमें सहसा चौंके देखा कि दाहने हाथने छतरी हिलाती-हुई ऊपरके रास्तेसे लावण्य आ रही है। सफेद साड़ी है, पीठपर काले रंगका तिक्कीना

दुशाला पड़ा है और उसमें काली झालर लटक रही है। अमित समझ गया कि लावण्यकी आधी दृष्टिने उसे मालूम कर लिया है, किन्तु सम्पूर्ण दृष्टिसे मुकाबलेमें उसे कबूल करनेको वह राजी नहीं। घुमावके पास तक ज्यों ही लावण्य पहुँची नहीं कि फिर अमितसे रहा न गया, दौड़ा-दौड़ा उसके सामने जा खड़ा हुआ। बोला, “जानती थीं कि बच नहीं सकतीं, फिर भी मुझसे दौड़ करा ही ली। जानती नहीं क्या कि दूर चले जानेसे कितनी असुविधा होती है?”

“काहेकी असुविधा?”

अमितने कहा, “जो अमागा पीछे पड़ा रह जाता है उसका जी जोरसे पुकारना चाहता है। पर पुकारूँ क्या कहकर? देव-देवियोंके विषयमें इतनी तो सुविधा है कि नाम लेकर पुकारनेसे वे प्रसन्न रहते हैं। ‘दुर्गा-दुर्गा’ कहके गर्जन करनेपर भी भगवती दशभुजा असन्तुष्ट नहीं होतीं। पर आपलोगोंके विषयमें बड़ी मुसीबत है।”

“पुकारा ही न जाय तो किस्सा खतम।”

“बिना सम्बोधनके ही काम चला लेना हूँ, पर जब पास रहती हूँ तब। इसीसे तो कहता हूँ कि दूर न जाया करें। पुकारना चाहता हूँ, पर पुकार नहीं सकता, इससे बढ़कर और कोई दुःख ही नहीं।”

“क्यों? विलायती कायदा तो आपको मालूम ही है।”

“मिस डाट? सो तो चायकी टेबिलपर। देखिये न, आज इस आकाशके साथ पृथ्वी जब सवेरेके प्रकाशमें मिली, तो उस मिलनेके लग्नको सार्थक करनेके लिए दोनोंने मिलकर एक रूपकी सृष्टि की, और उसीमें रह गया स्वर्ग-मर्त्यका रोजमर्राका प्रचलित नाम। अनुभव नहीं कर रहीं क्या, एक नाम लेकर पुकारना ऊपरसे नीचे आ रहा है और नीचेसे ऊपर जा रहा है? मनुष्यके जीवनमें भी क्या ऐसा नाम सृष्टि करनेका समय नहीं उपस्थित होता? कल्पना कीजिये न, मानो अभी मैंने जी खोलकर मुक्त कण्ठसे आपको पुकारा है, नामकी पुकार सम्पूर्ण वनमें ध्वनित हो उठी है, और वह आकाशके उन रंगीन बादलोंके पास तक जा पहुँची है, और सामनेका वह पहाड़ उसे सुनकर माथेसे बादल

लपेटकर खड़ा-खड़ा न-जाने क्या-क्या सोचने लगा । और तब आप कल्पना भी कर सकती हैं क्या कि मेरी उस पुकारकी ध्वनि होगी 'मिस डाट्' ?”

लावण्य इस बातको टालती-हुई बोली, “नामकरणमें समय लगता है । फिलहाल चलिये जरा चहलकदमी कर ली जाय ।”

अमित उसके साथ हो लिया, बोला, “चलना सीखनेमें भी आदमीको देर लगती है, पर मेरे लिए उलटी बात हो गई, इतने दिनों बाद यहाँ आकर मैंने बैठना सीखा है । अंगरेजीमें कहावत है, ‘लुढ़कने पत्थरके भाग्यमें काई भी नहीं जुटती’, यही सोचकर अँधेरे ही उठकर कबका सड़कके किनारे आ बैठा हूँ । इसीसे तो भोरकी किरण देखनेको मिली आज ।”

लावण्य उसकी बातको दबाकर चटसे पूछ उठी, “अच्छा, उस हरे-पंखवालो चिड़ियाका नाम जानते हैं आप ?”

अमितने कहा, “जीव-जगत्में चिड़ियाँ हैं, इस बातको अब तक साधारण तौरपर जनता था, विशेष-रूपसे जाननेका समय ही नहीं मिला । यहाँ आकर, आश्चर्य है, अब स्पष्ट जान सका हूँ कि चिड़ियाँ हैं, यहाँ तक कि वे गीत भी गाती हैं ।”

लावण्य हँस उठी, बोली, “आश्चर्य है !”

अमितने कहा, “हँस रही हैं ! मैं अपनी गहरी बातपर भी गाम्भीर्य नहीं रख सकता । यह मेरा मुद्रादोष है । मेरे जन्म-लग्नमें चन्द्र है और यह ग्रह कृष्णचतुर्दशीकी सत्यानाशी रातको भी बिना मुस्कराये मरना भी नहीं जानता ।”

लावण्यने कहा, “आप मुझे दोष मत दीजिये । शायद चिड़िया भी अगर आपकी बात सुनती तो हँस देती ।”

अमितने कहा, “देखिये, मेरी बातको सहसा लोग समझ ही नहीं पाते, इससे हँस दिया करते हैं । समझते होते तो चुपचाप बैठकर उसपर विचार करते । आज चिड़ियोंको मैंने नई तरहसे जाना तो लोग इसपर हँसते हैं । पर, इसके भीतरकी बात यह है कि आज सब-कुछ मैंने नई तरहसे जाना है, अपनेको भी । इसपर तो हँसी नहीं चल सकती । देखिये न, बात एक ही है, पर इस बार आप बिलकुल ही चुप हैं ।”

लावण्यने हँसते-हुए कहा, “आप तो मेरे लिए ज्यादा दिनके आदमी नहीं हैं, बिलकुल नये हैं, फिर और भी ज्यादा नयेका आग्रह आपमें आता कहाँसे है ?”

“इसके जवाबमें मुझे एक बहुत ही गम्भीर बात कहनी पड़ रही है, जो कि चायकी टेबिलपर नहीं कही जा सकती। मेरे अन्दर नई जो बात आई है वह है तो अनादिकालकी पुरानी ही बात, भोरके प्रकाशके समान पुरानी, नये खिले भूचम्पा फूलके समान चिरकालकी चीज, किन्तु उसका आविष्कार नया है।”

लावण्य कुछ बोली नहीं, सिर्फ हँस दी।

अमित कहता गया, “अबकी बार आपकी जो यह हँसी है सो पहरेदार की चोर-पकड़नेवाली गोल-लालटेनकी हँसी है। समझ गया मैं, आप जिस कविकी भक्त हैं। उसकी पुस्तकसे आपने मेरे मुँहकी कही-हुई बात पहले ही से पढ़ रखी है। दुहाई है आपको, मुझे दागी चोर न समझ लीजियेगा। किसी-किसी समय ऐसी अवस्था हो जाती है कि मनका भीतरी भाग शङ्कराचार्य हो उठता है, जो कहता रहता है, ‘मैंने ही लिखा है या और-किसीने, यह भेदज्ञान माया है।’ देखिये न, आज ही की बात है, सवेरे बैठे-बैठे सहसा मनमें आई कि अपने जाने-हुए साहित्यमेंसे ऐसी एक लाइन निकाल लूँ जो मालूम हो कि अभी-अभी स्वयं मैंने ही लिखी है, और कोई कवि ऐसा लिख ही नहीं सकता था।”

लावण्यसे रहा न गया, उसने पूछा, “निकाल सके फिर उसे ?”

“हाँ, निकाल ली।”

लावण्यके कुतूहलने फिर कोई बाधा ही नहीं मानी, पूछ बैठी, “कौन-सी लाइन है, बताइये न ?”

“For God's sake, hold your tongue
and let me love !”*

लावण्यका भीतरसे हृदय काँप उठा।

* ‘भगवानके लिए अपनी ज़बानको रोको, और मुझे प्रेम करने दो।’

बहुत देर तक चुप रहनेके बाद अमित बोला, “आप जरूर जानती हैं कि यह लाइन किसकी है।”

लावण्यने जरा-सा सिर झुकाकर इशारेसे बता दिया, ‘हाँ।’

अमितने कहा, “उस दिन आपकी टेबिलपर मैंने अंगरेज-कवि डॉनका काव्य आविष्कार कर डाला था, नहीं तो यह लाइन मेरे दिमागमें न आती।”

“आविष्कार किया था?”

“आविष्कार नहीं तो क्या? पुस्तककी दूकानपर पुस्तकें दिखाई पड़ती हैं, पर आपकी टेबिलपर पुस्तकें प्रकट होती हैं। पब्लिक लाइब्रेरीकी टेबिल देखी है मैंने, वह तो सिर्फ किताबोंका बोझ भेला करती है, और एक आपकी टेबिल भी देखी, उसने किताबोंके रहनेके लिए घोंसला बना दिया है। उस दिन डॉनकी कविताएँ मैं हृदयसे देख सका। ऐसा लगा मानो और सब कवियोंके दरवाजेपर भीड़ लगी हुई है, धक्कमधक्का हो रहा है, जैसे किसी बड़े-आदमीके श्राद्धमें भिखमंगे दान ले रहे हों। किन्तु, डॉनका काव्य-महल निर्जन है, वहाँ सिर्फ दो आदमियोंके लायक ही आस-पास बैठने-भरकी जगह है। इसीसे मुझे अपने सवेरेके मनकी बात ऐसी साफ-साफ सुनाई दी—

जरा तो खामोश हो, है दुहाई रामकी ;

प्यार करने दो मुझे, बात है यह कामकी।”

लावण्यने आश्चर्यके साथ पूछा, “आप कविता भी लिखते हैं क्या?”

‘मुझे डर है शायद आजसे लिखना न शुरू कर दूँ। नवीन अमित राय क्या गजब ढायेगा, पुराने अमित रायको इसका कुछ भी पता नहीं। हो सकता है कि वह अभी लड़ाई करने चल दे।’

“लड़ाई! किसके साथ?”

“अभी कुछ तय नहीं कर सका हूँ। बार-बार यही खयाल उठ रहा है कि किसी-एक बड़ी-भारी बातके लिए इसी वक्त आँख मीचकर प्राण दे देने चाहिए। उसके बाद अगर पश्चात्ताप करना पड़े तो धीरे-सुस्ते करता रहूँगा।”

लावण्यने हँसते-हुए कहा, “प्राण अगर देने ही हों तो जरा सावधानीसे दीजियेगा।”

“यह बात मुझसे कहना अनावश्यक है, साम्प्रदायिक ढंगमें जाना पसन्द नहीं करता मैं। मुसलमान और अंग्रेजोंसे मैं बचकर चलूँगा। अगर देखूँ कि बूढ़ा-टेढ़ा आदमी है, अहिंसा-तबीयतका धार्मिक चेहरा है, सिंगा बजाता-हुआ मोटरपर जा रहा है, तो, मैं उसके सामने खड़ा होकर रास्ता रोकके कहूँगा, ‘युद्ध देहि’, जो अजीर्णरोग दूर करनेके लिए अस्पताल न जाकर ऐसे पहाड़पर आते हैं और भूख बढ़ानेके लिए निर्लज्ज होकर हवा खाने निकलते हैं उनसे।”

लावण्य हँसके बोली, “इतनेपर भी अगर वह बिना कुछ परवा किये ही चला जाय ?”

“तब मैं पीछेसे दोनों हाथ आकाशकी ओर उठाकर कहूँगा, ‘अबकी बार मैंने तुम्हें माफ कर दिया, तुम मेरे भाई हो, हम एक ही भारत-माताकी सन्तान हैं।’ समझ गईं! मन जब बहुत बड़ा हो जाता है, आदमी तब युद्ध भी करता है और क्षमा भी।”

लावण्यने हँसते-हुए कहा, “आप जब युद्धका प्रस्ताव कर रहे थे तब मनमें मेरे डर लग रहा था, किन्तु क्षमाकी बात जिस ढंगसे आपने समझा दी, उससे तसल्ली हुई कि अब कोई चिन्ताकी बात नहीं।”

अमितने कहा, “मेरी एक बात रखियेगा ?”

“क्या, बताइये ?”

“आज भूख बढ़ानेके लिए ज्यादा घूमिये नहीं।”

“अच्छा ठीक है, उसके बाद ?”

“वहाँ नीचे पेड़-तले, जहाँ नाना रंगोंकी काई-शुदा पत्थरके नीचेसे थोड़ा-थोड़ा पानी बह रहा है, चलिये वहाँ चलके बैठा जाय।”

लावण्यने कलाईमें बँधी घड़ीकी तरफ देखकर कहा, “किन्तु समय अब थोड़ा ही रह गया है।”

“जीवनमें यही तो शोचनीय समस्या है, लावण्य देवी, कि समय थोड़ा है। रेगिस्तानका सफर है और साथमें पानी है सिर्फ आधी मशक, लिहाजा इस बातका खयाल हमें रखना ही होगा कि कहीं छलक-छलककर वह सूखी धूलमें पड़के मारा न जाय। जिनके पास समय बहुत ज्यादा है उन्हींके लिए

समयकी पाबन्दी शोभा देती है। देवताओंके पास असीम समय है इसीसे ठीक समयपर सूर्य उदय होता है और अस्त भी। और हमलोगोंकी मियाद थोड़ी है, पंचचुअल बननेमें समय नष्ट करना हमारे लिए अमितव्ययिता है। अमरावतीका कोई अगर पूछ बैठे कि 'संसारमें किया क्या', तो किस मुँहसे यह जवाब दूँगा कि 'घड़ीके काँटेकी तरफ निगाह रखकर काम करते-करते उसकी तरफ आँख उठाकर देखनेका समय ही न मिला जो जीवनके समस्त समयके अतीत और जीवनका सर्वस्व था।' इसीसे तो कहनेको मजबूर हुआ कि चलिये, वहाँ चलकर बैठें जरा !”

अमित जब बातचीत करता है तब उसे इस बातकी कोई आशङ्का ही नहीं रहती कि जिस बातमें उसे कोई आपत्ति नहीं उसपर और-किसीको कोई आपत्ति हो सकती है ; और इसीलिए उसके प्रस्तावपर आपत्ति करना कठिन हो जाता है। लावण्यने कहा, “चलिये।”

घने वनकी छाया है। पतली-सी पगडण्डी नीचे खसियोंके एक गाँवकी तरफ उतर गई है। अध-बीचमें एक क्षीण झरनेकी धाराने गाँव जानेके उस रास्तेको अस्वीकार करते-हुए उसपर अपने अधिकारके चिह्न-स्वरूप गोल-गोल कङ्कड़ बिछाकर अपना एक अलग रास्ता चालू कर दिया है। वहीं पत्थरपर दोनों जने बैठ गये। ठीक उसी जगह गड्ढा जरा गहरा हो गया है और वहाँ कुछ पानी भी जम गया है, मानो हरे परदेकी छायामें कोई परदानशील युवती खड़ी हो और बाहर कदम रखनेमें डर रही हो। यहाँका निर्जनताका आवरण ही लावण्यको निरावरणकी भाँति शरमिन्दा करने लगा। मामूली कोई भी बात छेड़कर उसे ढकनेको जी चाहता है, पर, कोई भी बात याद नहीं आ रही, स्वप्नमें जैसे कण्ठ रुक जाता है वैसी ही दशा है उसकी।

अमित समझ गया कि उसे कुछ-न-कुछ कहना ही चाहिए, उसने कहा, “देखिये, आर्या, हमारे देशमें दो तरहकी भाषा है, एक है साधु-भाषा और दूसरी चालू-भाषा। पर, इनके सिवा और-भी एक तरहकी भाषा होनी चाहिए थी, वह न तो समाजकी भाषा होती और न व्यवसायकी। वह होती आड़-ओटकी भाषा, ऐसी जगहोंके लिए। चिड़ियोंके गीत और कवियोंके काव्यके

समान उस भाषाको अनायास ही कण्ठसे निकलना चाहिए, जैसे कि रोना निकलता है। उसके लिए आदमीको किताबकी दूकानपर दौड़ना पड़े, यह बड़ी शर्मकी बात है। हँसनेके लिए हर दफे अगर कहीं डेन्टिस्टकी दूकानपर दौड़ना पड़ता तो हमारी क्या हालत होती, जरा सोचिये तो सही! सच कहिये, लावण्य देवी, ऐसी जगहमें बैठकर क्या आपका सङ्गीतके स्वरमें बात करनेको जी नहीं चाहता?”

लावण्य सिर झुकाये चुपचाप बैठी रही।

अमित कहता गया, “चायकी टेबिलकी भाषामें कौनसी भद्र है, कौन-सी अभद्र, इसका हिसाब ही नहीं निबटना चाहता। पर, इस जगह न कुछ भद्र है, न अभद्र। तो अब क्या किया जाय बताइये? मनको सहज-स्वाभाविक करनेके लिए कविता बिना पढ़े काम नहीं चलेगा। गद्य बहुत समय लेता है, और उतना समय हाथमें है नहीं। अगर इजाजत हो तो शुरू करूँ?”

देनी पड़ी इजाजत, नहीं तो लज्जा करते ही लज्जा आ धमकती।

अमितने भूमिका बाँधी, “रवीन्द्रनाथकी कविता शायद आपको अच्छी लगती होगी?”

“हाँ, लगती तो है।”

मुझे अच्छी नहीं लगती। लिहाजा मुझे क्षमा क्रीजियेगा। मेरा एक विशेष कवि है, उसकी रचना इतनी अच्छी है कि उसे बहुत कम आदमी पढ़ते हैं। यहाँ तक कि उसे कोई इतना भी सम्मान नहीं देता कि समालोचनामें ही दो-चार खरी-खोटी सुना दे। जी चाहता है कि आज मैं उसीमेंसे कुछ कहूँ?”

“आप इतना डर क्यों रहे हैं?”

इस विषयमें मेरा अनुभव शोचनीय है। कविबरकी निन्दा करनेसे उसे आपलोग जातसे निकाल देती हैं, और, कोई उससे बचकर चुपचाप निकल जाना चाहता है तो उसके लिए कठोर भाषाकी सृष्टि होती है। संसारमें सिर्फ इसी बातपर कि ‘जो मुझे अच्छा लगता है वह दूसरे किसीको क्यों नहीं अच्छा लगता’, इतनी खूनखराबी होती है जिसका ठिकाना नहीं।”

“मुझसे खूनखराबीका कोई डर नहीं । और अपनी रुचिके लिए मैं पराई रुचिके समर्थनकी भीख भी नहीं माँगती ।”

“यह आपने खूब कही ! तो फिर निर्भय होकर शुरू करता हूँ—

रे अपरिचित, हाथ तेरे
हैं मुठीमें बन्द मेरे,
कैसे छुड़ायेगा बता,
जब तक न मैं पहचानता ?

बातपर गौर किया आपने ? न-पहचाननेका बन्धन है, सबसे कड़ा बन्धन ।
अपरिचित-जगत्का बन्दी बना हूँ मैं, पहचान लेनेके बाद यहाँसे छुटकारा
पाऊँगा । इसीका नाम है ‘मुक्ति-तत्त्व’ ।

किस अन्ध-क्षणमें
विजड़ित तन्द्रा-जागरणमें
बीती रजनी, हुआ सवेरा,
मैंने निरखा मुखड़ा तेरा ।
आँखोंमें आँख डालकर पूछा मैंने, —

‘छिपी कहाँ जा, आत्म-विस्मृतिके किस कोनमें ?

अपनेको भूले रहने-जैसा कोना, इतना धुँधला कोना, मिलना मुश्किल है ।
संसारमें न-जाने कितनी देखने-लायक निधियाँ थीं, जिन्हें देख ही नहीं
सका, वे आत्म-विस्मृतिके कोनेमें जा छिपी हैं, दिखाई ही नहीं पड़तीं । पर
इसके मानी यह नहीं कि निराश होकर पतवार ही छोड़ दी जाय ।

तेरे साथ जान-पहचान कहीं
सहजमें होगी नहीं,
करूँ भले ही गुञ्जन में
मृदु कण्ठसे
ऐन तेरे कानमें ।

तेरी संशय-व्याकुल वाणीपर
पाऊँगा विजय मैं ।

लज्जा-शङ्का-दुर्बिधाकी कीचमेंसे लाऊंगा

खींचकर तुझे मैं

निर्दय प्रकाशमें ।

कवि हरगिज छोड़नेवाला नहीं । देखा, कितनी जबरदस्त शक्ति है ? रचनाका पौरुष देखा आपने !

जाग उठेगी तू आँसुओंकी धारमें,

पहचानेगी आपको अपने ही प्यारमें ;

टूटेगी बन्धन-डोर,

दूँगा मुक्ति तुझे जब

होगी मेरी मुक्ति तब ।

ठीक ऐसीकी ऐसी तान आपको नामजद लेखकोंमें नहीं मिलनेकी । असलमें यह सूर्यमण्डलमें आगकी आँधी है, आँधी ! यह सिर्फ 'लिरिक' नहीं निष्ठुर जीवन-तत्त्व है ।" इतना कहकर वह लावण्यके मुँहकी ओर एकटक देखता हुआ फिर कहने लगा—

“हे अपरिचित,

दिन गया, सन्ध्या हुई, समय यों ही चला जायगा,

तीव्र आकस्मिक दे बन्धन तोड़

बाधाओंसे बंदके होड़ ।

निर्भय हूँ, जीवनका भय गया भाग ।

तुम्हारे परिचयकी जल उठे आग !

उसे अर्पितकर जीवन अपना

करूँगा मैं सार्थक सपना ।”

कविता पूरी हो भी न पाई कि इतनेमें अमितने चटसे लावण्यका हाथ धर दबाया । लावण्यने अपना हाथ छुड़ाया नहीं । वह अमितके मुँहकी ओर देखने लगी, कुछ बोली नहीं ।

इसके बाद फिर किसीको कोई बात कहनेकी जरूरत ही नहीं हुई । लावण्य अपनी घड़ीकी तरफ देखना भी भूल गई ।

६-घटकई

अमित योगमायाके घर जाकर बोला, “मौसीजी, घटकई करने आया हूं। विदा देते वक्त कंजूसी न कीजियेगा।”

“पसन्द आ जाय तब तो ! पहले नाम-धाम विवरण तो बखानो।”

अमितने कहा, “नामसे वरकी कीमत नहीं आँकी जा सकती।”

“तब तो घटक - विदाईके हिसाबमेंसे कुछ काट-छाँट करनी ही पड़ेगी मालूम होता है।”

“यह तो आपने बेजा बात कही। नाम जिसका बड़ा होता है उसका संसार घरमें होता है कम और बाहर होता है ज्यादा। घरके मन-माफिक चलनेमें उसका जो समय लगता है उससे कहीं ज्यादा समय उसे बाहरके मन-माफिक चलनेमें देना पड़ता है। उस आदमीका बहुत कम अंश ही स्त्रीके हिस्सेमें आता है,—पूरे ब्याहके लिए उतना काफी नहीं। नामी आदमीका ब्याह स्वल्प-विवाह है, बहु-विवाहकी तरह ही गर्हित है वह।”

“अच्छा, नाम कम सही, किन्तु रूप ?”

“बतानेको जी नहीं चाहता,—कहीं अत्युक्ति न कर बैठूँ।”

“अत्युक्तिके जोरसे ही शायद बाजारमें चलाना है उसे ?”

“वर चुननेमें केवल दो बातोंपर लक्ष्य रखना चाहिए, नामके द्वारा घरसे और रूपके द्वारा वधूसे वर कहीं आगे न बढ़ जाय।”

“अच्छा, नाम और रूपको जाने दो, बाकीका ?”

“बाकी जो-कुछ रहा, कुल मिलाकर उसे पदार्थ^१ कहा जा सकता है। कम-से-कम वह अपदार्थ तो नहीं है।”

“बुद्धि ?”

“लोग जिससे उसे बुद्धिमान समझकर सहसा भ्रममें आ सकें इतनी बुद्धि है उसमें।”

“विद्या ?”

१ ‘पदार्थ’ = सार, योग्य। अपदार्थ = सारहीन, अयोग्य।

“स्वयं न्युटनके समान । वह जानता है कि ज्ञान-समुद्रके किनारेसे उसने सिर्फ छोटे-छोटे कंकड़ बीने हैं । न्युटनकी तरह वह साइसके साथ ज्यादा कुछ कह नहीं सकता, इस डरसे कि कहीं चटसे लोग विश्वास न कर बैठें ।”

“वरकी योग्यताकी सूची तो कुछ छोटी ही मालूम होती है ।”

“अन्नपूर्णाकी पूर्णता प्रकट करनेके लिए ही तो शिव अपनेको भिखारी कबूल करते हैं,— इसमें लज्जाकी कोई बात नहीं ।”

“तो फिर परिचयको और-भी जरा स्पष्ट कर दो ।”

“जाना-हुआ घर है । वरका नाम है अमितकुमार राय । हँसतीं क्यों हैं, मौसीजी ? आप सोचती होंगी, मजाक है ।”

“सो तो मनमें डर है, बेटा, कहीं अन्तमें मजाक ही न साबित हो ।”

“यह सन्देह तो वरपर दोषारोप है ।”

“बेटा, घर-गृहस्थीके भारको हँसके हलका किये रखना कोई कम क्षमता की बात नहीं ।”

“मौसीजी, देवताओंमें वह क्षमता है, और इसीसे वे विवाहके अयोग्य होते हैं । दमयन्तीने इस बातको समझा था ।”

“मेरी लावण्य क्या सचमुच तुम्हें पसन्द है ?”

“कैसी परीक्षा चाहती हैं आप, बताइये ?”

“परीक्षा तो एकमात्र यही है कि तुम निश्चित जान जाओ कि लावण्य तुम्हारे ही हाथमें है ।”

“जरा और व्याख्या कर दीजिये ।”

“जो रत्न रास्तेमें मिला है उसकी असल कीमत जो जानता है, उसीको समझूँगी कि जौहरी है ।”

“मौसीजी, बातको आप बहुत ज्यादा सूक्ष्म किये दे रही हैं, ऐसा लगता है जैसे किसी छोटी कहानीकी साइकोलॉजीपर सान चढ़ा ली हो । किन्तु बात असलमें काफी मोटी है । संसारके नियमानुसार एक भद्र पुरुष एक भद्र रमणीसे व्याह करनेके लिए उन्मत्त हो रहा है । दोष-गुण मिलाकर लड़का काम-चलाऊ है, और लड़कीकी तो बात ही क्या । ऐसी हालतमें साधारण

मौसियाँ तो स्वभावके नियमानुसार ही खुश होकर उसी वक्त आनन्द-लड्डू फोड़ना शुरू कर देती हैं ।”

“डरो मत, बेटा, लड्डूपर हाथ पड़ चुका है । मान लो कि लावण्यको तुम पा ही चुके । फिर भी हाथमें पानके बाद भी यदि तुम्हारी पानेकी इच्छा प्रबल बनी ही रहे, तभी समझूंगी कि तुम लावण्य-जैसी लड़कीसे ब्याह करने योग्य हो ।”

“मैं जो कि ऐसा आधुनिक हूँ, मुझे भी दंग कर दिया आपने ।”

“आधुनिकके क्या लक्षण देखे ?”

“देखता हूँ कि बीसवीं सदीकी मौसियाँ लड़कियोंका ब्याह करनेमें भी डरती हैं ।”

“इसकी वजह यह है कि पहलेकी शताब्दियोंकी मौसियाँ जिनका ब्याह कराती थीं वे होती थीं खेलकी गुड़ियाँ, और अब जो ब्याहकी उम्मेदवार होती हैं मौसियोंका खेलका शौक मिटानेकी तरफ उनका मन ही नहीं जाता ।”

“डरिये नहीं आप । पाकर पाना निबटता नहीं, बल्कि उसकी चाहना बढ़ती ही जाती है । लावण्यसे ब्याह करके इसी तत्त्वको सिद्ध कर दिखाने के लिए अमित राय मर्त्यमें अवतीर्ण हुआ है । नहीं तो, मेरी मोटर-गाड़ी अचेतन वस्तु होनेपर भी अ-स्थान और अ-समयमें ऐसी अनहोनी अद्भुत घटना क्यों कर डालती ?”

“बेटा, विवाह-योग्य उमरका सुर अभी तक तुम्हारी बातचीतमें आया नहीं है, अन्तमें सब-कुछ किया-कराया बात्यविवाहमें परिणत न हो जाय ।”

“मौसीजी, मेरे मनका एक स्वकीय आपेक्षिक गुर्व्व है, उसकी बदौलत मेरे हृदयकी भारी बातें जबानपर खूब हलकी होकर बहने लगती हैं, पर इससे उनका वजन नहीं घटता ।”

योगमाया चली गई भोजनकी व्यवस्था करने । अमित कभी इस कमरेमें और कभी उस कमरेमें घूमता फिरा । दर्शनीय कोई दिखाई नहीं दिया । दिखाई दिया यतिशङ्कर । याद आ गई, आज उसे ‘ऐप्टानी क्लियोपैट्रा’ पढ़ानेकी बात थी । अमितके चेहरेका भाव देखते ही यति समझ गया कि

जीवपर दया करके ही आज चटसे छुट्टी ले लेना उसका आशु कर्तव्य है। उसने कहा, “अमित-दादा, अगर कुछ खयाल न करें तो, आज मैं छुट्टी चाहता हूँ- अपर-शिलांग घूमने जाऊँगा।”

अमित पुलकित होकर बोल उठा, “पढ़नेके समय जो छुट्टी लेना नहीं जानते वे पढ़ते ही हैं, पढ़ना हजम नहीं करते। तुम छुट्टी माँगो और मैं कुछ खयाल करूँ, ऐसा असम्भव भय तुम्हें हुआ कैसे?”

“कल रविवार है, छुट्टी तो है ही, यह सोचकर कहीं तुम - ”

“मेरी स्कूल-मास्टरी बुद्धि थोड़े ही है, भाई, नियमित छुट्टीको तो मैं छुट्टी ही नहीं मानता। जो छुट्टी नियमित है उसका भोग करना और बँधे-हुए पशुका शिकार करना एक ही बात है। उससे छुट्टीका रस फीका पड़ जाता है।”

सहसा जिस उत्साहके साथ अमितकुमार छुट्टी-तत्त्वकी व्याख्या करनेमें उन्मत्त हो उठा, उसके मूल-कारणका अनुमान करके यतिशङ्करको बड़ा आनन्द आया। उसने कहा, “कई दिनोंसे छुट्टी-तत्त्वके सम्बन्धमें तुम्हारे दिमागमें नये-नये भाव पैदा हो रहे हैं। उस दिन भी तुमने मुझे उपदेश दिया था। ऐसे ही और कुछ दिन चलता रहा तो छुट्टी लेनेमें मेरा हाथ सध जायगा।”

“उस दिन क्या उपदेश दिया था?”

“बताया था, ‘कर्तव्य-बुद्धि मनुष्यका एक महान् गुण है। उसका आह्वान आनेपर फिर जरा भी देर करना उचित नहीं।’ कहके किताब बन्द कर दी तुमने, और चटसे बाहर भाग गये। बाहर शायद कहीं किसी अकर्तव्यका आविर्भाव हुआ होगा, मैंने लक्ष्य नहीं किया।”

यतिशङ्करकी उमर बीसके खानेमें है। अमितके मनमें जो चाञ्चल्य उठ रहा है, उसके अपने मनमें भी उसका आन्दोलन आकर लग रहा है। उसने लावण्यको अब तक शिक्षक-जातीय ही समझ रखा था, पर आज अमितके अनुभवसे ही समझ गया कि वह नारी-जातीय है। अमितने हँसके कहा, “कार्य सामने आते ही तैयार हो जाना चाहिए, इस उपदेशका बाजार-भाव ज्यादा है, अकबरी अशरफीकी तरह, पर उसके दूसरी ओर खुदा रहना चाहिए ‘अकार्य सामने आते ही उसे वीरोंकी भाँति मान लेना चाहिए’।”

“तुम्हारी इस वीरताका परिचय आजकल अकसर मिला करता है।”

यतिशङ्करकी पीठ थपथपाते-हुए अमितने कहा, “जरूरी कामकी एक ही बारमें वलि देनेकी पवित्र अष्टमी-तिथि तुम्हारी जीवन-पञ्जिकामें एक दिन जब आयेगी तब देवीकी पूजामें देर मत करना, भाई, उसके बाद विजयदशमी आनेमें देर नहीं लगती।”

यतिशङ्कर चला गया। इधर अकर्तव्य-बुद्धि भी जाग्रत थी, पर जिसका आश्रय पाकर अकार्य दिखाई देता है उसका कहीं पता ही नहीं! अमित घरमेंसे निकल आया बाहर।

बाहर आकर देखा कि सामने फूलोंसे आच्छन्न गुलाबकी लता है, उसके एक तरफ सूर्यमुखीकी भीड़ लगी है और दूसरी तरफ चौखूँटे काठके टबमें है चन्द्रमल्लिका। घासके ढालू खेतके ऊपरकी तरफ एक ‘युकैलिप्टस’का पेड़ है बड़ा-भारी। उसके तनेसे पीठ लगाये और सामने पैर फैलाये बैठी है लावण्य। मटमैले रंगका अलवान ओढ़े है; और पाँवोंपर पड़ रही है सवेरेकी घाम। गोदमें रूमालपर कुछ रोटीके टुकड़े और फोड़े-हुए अखरोट रखे हैं। आज सवेरेका समय उसने जीव-सेवामें बिताना चाहा था, पर उसे वह भूल गई। अमित उसके पास जा खड़ा हुआ। लावण्यने सिर उठाके उसके मुँहकी तरफ देखा और चुप रही। चेहरा उसका मृदु मुसकानसे खिल उठा। अमितने ठीक उसके सामने बैठकर कहा, “एक शुभ संवाद है। मौसीजीकी सम्मति मिल गई।”

लावण्यने इसका कोई उत्तर न देकर पास ही खड़े-हुए एक निष्फल पाँचके पेड़की तरफ अखरोटका एक टुकड़ा फेंक दिया। देखते-देखते उसके तनेसे एक गिलहरी उतर आई। यह जीव लावण्यके मुष्टिभिक्षुकोंमेंसे एक है।

अमितने कहा, “यदि आपत्ति न हो तो, तुम्हारे नामको मैं जरा क्वाँट देना चाहता हूँ।”

“क्वाँट दो।”

“तुम्हें ‘वन्य’ कहा करूँगा मैं।”

“वन्य।”

“नहीं-नहीं, यह नाम तो शायद तुम्हारा बदनाम हो गया। ऐसा नाम तो मुझे ही शोभा देगा। मैं तुम्हें कदा कदा ‘वन्या’, क्यों ठीक है-न ?”

“सो ही कहना। पर अपनी मौसीजीके सामने नहीं।”

“हरगिज नहीं। ये सब नाम बीजमन्त्रके सामने हैं, और-किसीके सामने प्रकट थोड़े ही किये जाते हैं। यह तो सिर्फ मेरे मुँह और तुम्हारे कानों तक ही सीमित रहेगा।”

“अच्छी बात है।”

“मेरे लिए भी ऐसे ही एक गैर सरकारी नामकी जरूरत है। सोच रहा हूँ, —‘ब्रह्मपुत्र’ कैसा रहेगा ? वन्या (बाढ़) सहसा आई और उसके दोनों तटोंको बहा ले गई !”

“नाम हमेशा बुलाने-करनेके लिए वजनमें कुछ भारी होगा।”

“बात तो ठीक है। कुली बुलाना पड़ेगा पुकारनेके लिए। तो, तुम्हीं बताओ कोई नाम ? वह तुम्हारी ही सृष्टि होगी।”

“अच्छा, मैं भी तुम्हारा नाम जरा हलका कर दूँगी। तुम्हें कदा कदा मैं ‘मीता’।”

“वाह वाह ! पदावलीमें इसीका एक दूसरा नाम है ‘पीतम’। वन्या, मैं सोच रहा हूँ, अपने-दिये इसी नामसे ही अगर सबके सामने मुझे बुलाओ तो क्या हानि है ?”

“डर लगता है, कहीं एक कानका धन पाँच कानमें जाकर सस्ता न हो जाय।”

“बात तो झूठ नहीं। दोके कानोंमें जो एक है, पाँचके कानोंमें वह भगनाश है। — वन्या !”

“क्या, मीता ?”

“तुम्हारे नामपर अगर कविता बनाऊँ तो कौनसी तुक बिठाऊँगा जानती हो ? — अनन्या।”

“उसके मानी क्या होंगे ?”

“मानी होंगे, तुम जो हो वही हो, और कुछ भी नहीं हो।”

“यह कोई विशेष आश्चर्यकी बात तो नहीं हुई।”

“कहती क्या हो ! बहुत ही आश्चर्यकी बात है । दैवसे ही कोई-कोई आदमी ऐसा दिखाई देता है जिसे देखते ही मन चौंककर कह उठता है, ‘यह मुझ ही जैसा है, और पाँच जनों जैसा नहीं है ।’ इसी बातको मैं कवितामें कहूँगा—

हे मेरी वन्या, तुम हो अनन्या,
अपने स्वरूपमें आप हो धन्या।”

“तुम क्या मुझपर कविता बनाया करोगे क्या ?”

“जरूर । किसकी मजाल है जो रोके उसकी गतिको !”

“ऐसे जानपर क्यों खेलना चाहते हो ?”

“कारण बताता हूँ । नींद न आनेसे जैसे धर-उधर करवट बदलना पड़ता है उसी तरह कल रातको ढाई बजे तक सिर्फ ‘ऑक्सफोर्ड बुक ऑफ वर्सेज’के पन्ने उलटता रहा था । प्रेमकी कविता उसमें ढूँढ़े ही न मिली, पहले वे पाँवसे आ-आ लगती थीं । स्पष्ट ही समझमें आने लगा कि मैं लिखूँगा, इसके लिए संसार आज प्रतीक्षा कर रहा है ।”

इतना कहकर उसने लावण्यका बायाँ हाथ अपने दोनों हाथोंके बीचमें दबा लिया, और फिर बोला, “हाथ तो धिर गये, अब कलम काहेसे पकडूँ ? तुकका सबसे अच्छा मेल है हाथों-हाथ मिलना । यह जो तुम्हारी उंगलियाँ मेरी उंगलियोंसे बातें कर रही हैं, आज तक कोई भी कवि ऐसे सहज-स्वाभाविक ढंगसे कुछ लिख ही नहीं सका ।”

“तुम्हें जल्दी तो कुछ पसन्द नहीं आता, इसीसे तुमसे इतना डरती हूँ, मीता !”

“पर मेरी बात समझ देखो जरा । रामचन्द्रने सीताका सत्य परखना चाहा था बाहरकी आगसे, इसीसे सीताको खो बैठे वे । कविताका सत्य परखा जाता है भीतरकी अग्नि-परीक्षासे । वह आग हृदयकी होती है । जिसके हृदयमें वह आग नहीं वह परखेगा किस चीजसे ? पाँच आदमियोंके मुँहकी बात उसे मान लेनी पड़ती है, और बहुधा वह होती है दुर्मुखकी बात । मेरे हृदयमें आज आग जल रही है । उस आगके भीतरसे मैं अपनी पुरामी

पढ़ी-हुई चीजें फिरसे पढ़े ले रहा हूँ। कितना कम टिका वह ! सब जलकर खाक हुआ जा रहा है। कवियोंके शोरगुलके बीच खड़े होकर आज मुझे कहना पड़ा, तुमलोग इतना चिल्लाकर बात न करो, असल बात आहिस्तेसे कह दो—
For God's sake, hold your tongue
and let me love."

बहुत देर तक दोनों चुपचाप बैठे रहे। फिर, किसी एक समय लावण्य का हाथ उठाकर अमितने अपने मुँहपर फेर लिया। बोला, "जरा सोच देखो, वन्या, आज सवेरे ठीक इसी क्षणमें समस्त संसारमें कितने असंख्य लोगोंने मनचाही चीज चाही होगी, पर, मिली कितने थोड़ोंको ! मैं जो उन्हीं थोड़े आदमियोंमेंसे एक हूँ। सारी पृथिवीपर एकमात्र तुम ही उस सौभाग्यवान् आदमीको देख सकीं शिलांग-पहाड़के एक कोनेमें, इस युकैलिप्स-पेड़के नीचे। संसारकी परमाश्चर्यजनक घटनाएँ परम नम्र होती हैं, वे आँखोंके आगे आना ही नहीं चाहतीं। और फिर, मजा यह कि तुम्हारा वह तारिणी तलपात्र कलकत्तेकी गोलदिग्घीसे लेकर नोआखाली-चटगाँव तक चिल्ला-चिल्लाके शून्यमें घूँसा तान-तानकर टेढ़ी राजनीतिकी कोरी आवाज फैला आया ; और वही जबरदस्त फजूलकी खबर इस देशकी सर्वप्रधान खबर हो उठी। कौन जाने, शायद वही अच्छा हो।"

"क्या अच्छा हो?"

"यही कि संसारकी असल चीजें हाट-बाजारमें ही चलती-फिरती रहती हैं, फिर भी फालतू आदमियोंकी आँखोंकी ठोकर खा-खाकर नहीं मरतीं। उनका गहरा परिचय विश्व-जगत्की अन्तरङ्ग नाड़ियोंके साथ है। अच्छा, वन्या, मैं तो बकता ही जा रहा हूँ,—तुम चुपचाप बैठी-बैठी क्या सोच रही हो, बताओ तो?"

लावण्य आँखें झुकाये बैठी रही, उसने कुछ जवाब नहीं दिया।

अमितने कहा, "तुम्हारा यह चुप रहना कुछ ऐसा लगता है जैसे बगैर तनखा चुकाये ही उसने मेरी सब बातोंको बरखास्त कर दिया हो।"

लावण्यने आँखें झुकाये हुए ही कहा, "तुम्हारी बातें सुनकर मुझे डर लगता है, मीता।"

“डर किस बातका ?”

“तुम मुझसे क्या चाहते हो, और मैं भला तुम्हें कितना-सा दे सकूंगी, मैं कुछ सोच नहीं पा रही हूँ।”

“कुछ सोचे बिना ही तुम दे सकती हो, इसीमें तो तुम्हारे दानका मूल्य है।”

“तुमने जब कहा कि मौसीजीने सम्मति दे दी है तब मेरा मन कैसा-तो हो उठा। मालूम हुआ कि अब मेरे पकड़े जानेके दिन आ गये।”

“पकड़ाई तो देनी ही होगी।”

“मीता, तुम्हारी रुचि, तुम्हारी बुद्धि, मुझसे बहुत ऊपर है। तुम्हारे साथ एकसंग चलते-चलते एक दिन मैं तुमसे इतनी पिछड़ जाऊँगी कि तब फिर तुम मुझे मुझके बुलाओगे भी नहीं। उस दिन मैं तुम्हें जरा भी दोष न दूँगी। - नहीं-नहीं, कुछ कहो मत, पहले मेरी बात सुन लो। तुमसे मैं बिनती करती हूँ, मुझसे तुम ब्याह करना मत चाहो। ब्याह करके फिर गाँठ खोलने लगोगे तो उसमें और भी उलझन पड़ जायगी। तुम्हारे पाससे जो कुछ मुझे मिला है वह मेरे लिए काफी है। जीवनके अन्त तक उससे मेरी गुजर हो जायगी। किन्तु तुम अपनेको बहलाओ मत।”

“बन्या, तुम आजके दिनकी उदारतामें कलके दिनके कार्पण्यकी आशङ्का क्यों कर रही हो ?”

“मीता, तुम्हींने मुझे सच कहनेका जोर दिया है। आज तुमसे जो-कुछ मैं कह रहा हूँ, तुम खुद भी उसे भीतर-ही-भीतर समझते हो; किन्तु मानना नहीं चाहते, इसलिए कि जो रस अभी भोग रहे हो उसमें कहीं कोई बाधा न आ जाय। तुम तो घर-गृहस्थी खोलनेवाले जीव नहीं हो, तुम तो केवल रुचिकी तृष्णा मिटानेके लिए फिरा करते हो। इसीसे साहित्य-ही-साहित्यमें तुम विहार किया करते हो। मेरे पास भी तुम इसीलिए आये हो। कह दूँ ठीक बात ? विवाह-वस्तुको तुम मन-ही-मन जानते हो, जैसा कि तुम हमेशा कहा करते हो, ‘वल्गर’, भद्दा। वह बड़ा रेस्पेक्टेबल है, वह शास्त्रोंकी मुहर-लगी चीज है,—और उन्हीं सम्पत्तिशाली लोगोंकी पालतू वस्तु, जो सम्पत्ति के साथ सहधर्मिणीको मिलाकर मोटे तकियोंके सहारे गद्दीमें बैठा करते हैं।”

“वन्या, तुम आश्चर्यजनक नरम सुरमें आश्चर्यजनक कड़ी बात कह सकती हो !”

“मीता, यही चाहती हूँ मैं, कि प्रेमके जोरसे हमेशा कठिन रह सकूँ मैं । तुम्हें बहलाये रखनेके लिए जरा भी धोखा न दूँ कभी । तुम जैसे आज हो, ठीक वैसे ही बने रहो सदा । तुम्हारी रुचिमें मैं जितनी अच्छी लगूँ उतनी ही लगती रहूँ । किन्तु तुम जरा भी दायित्व न लेना, इसीमें मैं खुश रहूँगी ।”

“वन्या, तो अब मुझे भी अपनी बात कह लेने दो । कैसे आश्चर्यपूर्ण ढंगसे तुमने मेरे चरित्रकी व्याख्या की है ! इस बातको लेकर मैं बहस नहीं करूँगा । पर, एक जगह तुम जरा गलती कर रही हो । आदमीका चरित्र भी चलता है । घरमें जो उसकी पालतू अवस्था है उसमें उसका एक तरहका जंजीरसे-बँधा स्थावर परिचय है । उसके बाद जब एक दिन भाग्यके किसी एक आकस्मिक वारसे उसको वह जजीर कट जाती है तब वह जंगलकी ओर भागता है, तब उसकी मूर्ति कुछ और ही होती है !”

“आज तुम उसमेंसे कौनसे हो ?”

“जो मेरे अपने बराबर यानी सदैवके साथ नहीं मिलता, वही हूँ मैं आज । इसके पहले बहुत-सी लड़कियोंसे मेरा परिचय हुआ है, समाजकी बनी नहरसे चलकर पक्के घाटपर, रुचिकी चिमनी-दार लालटेनके उजालेमें । उसमें केवल देखना-भालना होता है, जानना-पहचानना नहीं होता । तुम खुद ही बताओ-न, वन्या, तुम्हारे साथ भी क्या मेरा वैसा ही परिचय है ?”

लावण्य चुप रही ।

अमित कहने लगा, “बाहरसे दो नक्षत्र एक दूसरेकी बन्दन! और प्रदक्षिणा करते-हुए, चलते हैं, यह तरीका अत्यन्त शोभन है और निरापद भी ; इसमें मानो उनकी रुचिका आकर्षण है, किन्तु मर्मका मेल नहीं । सहसा अगर मौतका धक्का लगता है तो बुझ जाती हैं दोनों नक्षत्रोंकी लालटेनें, दोनोंमें एक हो उठनेकी आग जल उठती है । अब वह आग जल उठी है, अभीत राय बदल गया है । मनुष्यका इतिहास ही ऐसा है । उसे देखनेसे मालूम होता है कि वह धाराबाहिक है, किन्तु है असलमें वह आकस्मिकका माला

गूँथना । सृष्टिकी गति चलती है उसी आकस्मिकके धक्के खा-खाकर रेल-पेलमें, एक युगसे दूसरे युगमें बढ़ती चली जाती है ऋतुतालकी लयमें । तुमने मेरा ताल बदल दिया है, वन्या, उस तालमें ही तो तुम्हारा सुर और मेरा सुर दोनों एक जगह आ गुँथे हैं ।”

लावण्यकी आँखोंके पलक भीग आये । फिर भी वह यह बात सोचे बिना न रह सकी कि ‘अमीतके मनकी गढ़न साहित्यिक ढंगकी है, प्रत्येक अभिज्ञतामें, हर जानकारीमें, उसके मुँहसे बातोंका फुहारा छूट निकलता है । वही उसके जीवनकी फसल है, उसीसे उसे आनन्द मिलता है । मेरी जरूरत भी उसे इसीलिए है । ये सब बातें उसके मनमें बरफ होकर जमी-हुई हैं, वह खुद उनका भार अनुभव कर रहा है, पर आहट नहीं सुन पाता,—मुझे खुद गरमी पहुँचाकर उसे गलाकर झरा देना होगा ।’

दोनों बहुत देर तक चुपचाप बैठे रहे । लावण्यने सहसा एक समय प्रश्न किया, “अच्छा, मीता, तुम्हें क्या ऐसा नहीं मालूम होता कि जिस दिन ‘ताजमहल’ बनकर तैयार हुआ था उस दिन मुमताजकी मृत्युके लिए शाहजहाँ खुश हुए थे ? उनके स्वप्नको अमर करनेके लिए उस मृत्युकी जरूरत थी । वह मरना ही मुमताजका सबसे बड़ा प्रेमका दान था । ताजमहलमें शाहजहाँका शोक प्रकट नहीं हुआ, बल्कि उसमें उनके आनन्दने अपना रूप पाया है ।”

अमितने कहा, “अपनी बातोंसे तुम क्षण-क्षणमें मुझे चौँकानी चली जा रही हो, वन्या ! तुम जरूर कवि हो ।”

“मैं नहीं चाहती कवि होना ।”

“क्यों नहीं चाहती ?”

“जीवनके उत्तापसे केवल बातोंका दीप जलानेको मेरा जी नहीं चाहता । संसारमें जिन्हें उत्सव-सभा सजानेका हुक्म मिला है, बातें उन्हींके लिए अच्छी होती हैं । मेरे जीवनका ताप जीवनके कामके लिए ही है ।”

“वन्या, तुम बातोंको अस्वीकार कर रही हो ? तुम नहीं जानती कि तुम्हारी बातें मुझे किस कदर जगा देती हैं ! तुम कैसे जानोगी कि तुम क्या कह रही हो और उस कहनेके मानी क्या हैं । मालूम होता है फिर निवारण

चक्रवर्तीको बुलाना पड़ेगा । उसका नाम सुनते-सुनते भीतरसे तुम झुँझला उठी होगी । पर, क्या करूँ, बताओ, वही मेरे मनकी बातोंका भण्डारी है । निवारण अभी तक अपने लिए भी आप पुराना नहीं हुआ है, वह प्रत्येक बार ही जो कविता लिखता है वही उसकी पहली कविता है । उस दिन उसकी कापी उलटने-पलटनेमें, कुछ दिन पहलेकी उसकी एक कविता हाथ लग गई । 'भरना' पर है कविता । कैसे-तो उसे खबर लग गई कि शिलांग-पहाड़पर आकर मेरा भरना मुझे मिल गया है । वह लिखता है :—

निर्भर, तेरे निर्मल जलकी चञ्चल धारा,

देख रहे हैं उसमें मुखड़ा सूरज-तारा ।

मैं खुद भी अगर लिखता तो तुम्हारा मैं इससे बढ़कर स्पष्ट वर्णन नहीं कर सकता था । तुम्हारे मनके अन्तःपुरमें ऐसी एक स्वच्छता है जिसमें आकाशका सम्पूर्ण आलोक सहजमें ही प्रतिबिम्बित हो उठता है । तुम्हारे सब-कुछपर छाये-हुए उस उजालेकी मैं देख रहा हूँ तुम्हारे चेहरेपर, तुम्हारी हँसीमें, तुम्हारी बातोंमें, तुम्हारे चुपचाप बैठे रहनेमें, तुम्हारे चलने-फिरनेमें ।

अपनी उस धारामें मेरी भी छायाको

किनारे कहीं थोड़ी-सी जगह दे, खिलाना तुम,

खेलके बहाने क्या

बनके तुम्हारे मीत, होंगे न खिलौना हम ?

मेरी उस छायामें मिला देना घोलकर कोयल-सी मीठी धुन,

अपनी तुम वाणी भी देना साथ वही जो तुम्हारी हो चिरन्तन ।

तुम भरना हो । अपने जीवन-स्रोतमें सिर्फ बहती ही चली जा रही हो सो बात नहीं, तुम्हारे चलनेके साथ-साथ तुम्हारा बोलना भी चालू है । संसारके जिन कठोर और अचल पत्थरोंपरसे तुम चलती हो वे भी तुम्हारे संचातसे एकस्वरमें बज उठते हैं ।

हे निर्भरिणी, मेरी छाया,

मुसकान-भरी तेरी काया,

दोनोंकी है एक छवि ।

देख उसी छविको मनमें
जाग उठा मम प्राण-कवि ।
तेरे प्रकाशने पद-पदपर
भाषा देकर मेरे मनको
है दिखा दिया वाणीका रूप,
ओ निर्मरिणी,
मेरी सरणी,
तेरे प्रवाहने जगा दिया मन,
जान गया मैं अपनेपनको ।”

लावण्यने जरा उदास हँसी हँसकर कहा, “मुझमें प्रकाशकी चमक, भाषाकी दमक और प्रवाहकी तमक चाहे कितनी ही क्यों न हो, मीता, तुम्हारी छाया आखिर छाया ही रह जायगी, उस छायाको मैं पकड़के नहीं रख सकती ।”

अमितने कहा, “किन्तु किसी दिन शायद तुम देख लोगी कि संसारमें और-कुछ अगर न भी रहे, तो भी, कम-से-कम मेरा ‘वाणीका रूप’ तो रह ही गया है ।”

लावण्यने हँसकर कहा, “कहाँ ? निवारण चक्रवर्तीकी कापीमें ?”

“संसारमें आश्चर्य कुछ भी नहीं । मेरे मनके नीचेके स्तरमें जो धारा बह रही है वह कैसे निवारणके फव्वारेमेंसे निकलने लगती है ?”

“तब तो शायद, किसी दिन निवारण चक्रवर्तीके फव्वारमें ही तुम्हारे मनको पा जाऊँगी, और कहीं भी नहीं ।”

इतनेमें भीतरसे बुलावा आ गया । खाना तैयार है ।

अमित भीतर जाते-जाते सोचने लगा, ‘लावण्य अपनी बुद्धिके प्रकाशमें सब-कुछ साफ जान लेना चाहती है । मनुष्य स्वभावतः जहाँ अपनेको बहलाये रखना चाहता है, लावण्य वहाँ भी अपनेको नहीं बहला सकती । अभी-अभी उसने जो बात कही है उसका तो मुझसे प्रतिवाद करते नहीं बना । किन्तु अन्तरात्माकी गभीर उपलब्धिको बाहर प्रकट करना ही पड़ता है, कोई करता है जीवनमें और कोई करता है अपनी रचनामें,— जीवनको छूते-हुए और साथ

ही उससे इटते-हुए, नदी जैसे बराबर तीरसे इटती-हुई चलती है ठीक वैसे ही। मैं क्या हमेशा रचनाका स्रोत लेकर ही जीवनसे इटता रहूंगा ? क्या यहींपर स्त्री-पुरुषमें भेद है ? पुरुष अपनी सम्पूर्ण शक्तिको सार्थक करता है सृष्टि करनेमें, वह सृष्टिको आगे बढ़ानेके लिए ही कदम-कदमपर अपनेको भूलता रहता है। स्त्री अपनी सारी शक्तिका प्रयोग करती है रक्षा करनेमें, प्राचीनकी रक्षा करनेके लिए ही नूतन सृष्टिको वह बाधा नहीं देती है। रक्षाके प्रति सृष्टि निष्ठुर होती है, और सृष्टिके प्रति रक्षा है विघ्न। ऐसा क्यों हुआ ? एक-न-एक जगह ये दोनों परस्परको आघात करेंगी ही। जहाँ बहुत ज्यादा मेल होता है वहीं जबरदस्त विरुद्धता रहती है। इसीसे सोचता हूँ कि हमारा सबसे बढ़कर जो पावना है वह मिलन नहीं किन्तु मुक्ति है। - ये बातें सोचनेमें अमितको चोट पहुँची, किन्तु उसका मन उन्हें अस्वीकार न कर सका।

८ - लावण्यका तर्क

योगमायाने कहा, “बेटो लावण्य, तुमने ठीक समझ लिया है न ?”

“हाँ, ठीक समझ लिया है, मा !”

“अमिन बड़ा चञ्चल है। मैं इस बातको मानती हूँ, इसीलिए उससे इतना स्नेह करती हूँ। देखो न, वह कैसा विश्रुङ्खल है। उसके शिथिल हाथोंसे मानो सब-कुछ गिरा जा रहा हो।”

लावण्यने जरा हँसकर कहा, “उन्हें अगर सब-कुछ पकड़के रखना पड़ता, उनके हाथसे अगर सब-कुछ खिसककर गिरता न रहता, तभी उनके लिए होती विपत्ति। उनका नियम है कि या तो वे पाकर भी न पायेंगे, या फिर पाते ही खो देंगे। जिसे पायेंगे उसे रखना ही होगा, यह उनकी प्रकृतिके साथ मेल ही नहीं खाता।”

“सच कहती हूँ, बेटो, उसका लड़कपन मुझे बहुत अच्छा लगता है।”

“यह माका धर्म है। बचपनकी जो भी कुछ जिम्मेदारी है, सब माकी है। और, लड़केके लिए जो कुछ है, सब खेल है। पर मुझे क्यों कह रही हो जिम्मेदारी लेनेको ?”

“तुम देखती नहीं, लावण्य, उसका ऐसा उपद्रवी मन, आजकल बहुत-कुछ शान्त-सा हो गया है। देखके मुझे बड़ी ममता आती है। कुछ भी कहो, वह तुमसे प्रेम करता है।”

“सो तो करते हैं।”

“तो फिर चिन्ताकी क्या बात है?”

“मा, उनका जो स्वभाव है उसपर मैं जरा भी अत्याचार नहीं करना चाहती।”

“मैं तो यही जानती हूँ, लावण्य, प्रेम थोड़ा-बहुत अत्याचार चाहता ही है, और अत्याचार करता भी है।”

“किन्तु, मा, उस अत्याचारके लिए एक क्षेत्र होता है। पर, स्वभावपर पीड़न सहन नहीं होता। साहित्यमें प्रेम-सम्बन्धी पुस्तकें मैंने जितनी ही पढ़ी हैं उतनी ही यह बात बार-बार मेरे मनमें आई है कि प्रेमकी ट्रैजिडी (शोकान्तता) वहीं हुई है जहाँ परस्पर एक दूसरेको स्वतन्त्र समझकर आदमी सन्तुष्ट नहीं रह सका है। अपनी इच्छाको ‘दूसरेकी इच्छा’ बनानेके लिए जहाँ जुल्म होता है वहाँ यही मनमें आता है कि दूसरेको अपनी तबीयतके माफिक बदलकर अनुकूल सृष्टि कर डालें।”

“सो तो, बेटी, दो जने मिलकर जहाँ घर-गृहस्थी बनाते हैं वहाँ परस्पर एक दूसरेकी थोड़ी-बहुत सृष्टि किये बिना काम ही नहीं चलता। जहाँ प्रेम है वहाँ सृष्टि आसान होती है, जहाँ नहीं है वहाँ हथौड़ी चलानेमें, जिसे तुम ‘ट्रैजिडी’ कहती हो वही होता है।”

“जो आदमी घर-गृहस्थी बनानेके लिए ही तैयार किये गये हैं उनकी बात छोड़ दो। वे तो ‘मिट्टीके आदमी’ होते हैं, दुनियादारीके रोजमर्राके दबावसे ही उनका गढ़ना-पीटना अपने-आप ही होता रहता है। किन्तु जो आदमी कतई ‘मिट्टीका आदमी’ नहीं है वह अपनी स्वाधीनताको किसी भी तरह नहीं छोड़ सकता। जो नारी इस बातको नहीं समझती वह जितना ही दावा करती है उतनी ही वञ्चित रहती है। इसी तरह जो पुरुष इतना नहीं समझता वह भी खींचातानी करके असल आदमीको खो बैठा है। मेरा

विश्वास है कि अधिकांश क्षेत्रोंमें, जिसे हम 'पाना' कहती हैं वह और कुछ नहीं, हाथको जैसे दृथकड़ी पाती है वैसा ही समझो ।”

“तुम क्या करना चाहती हो, लावण्य ?”

“मैं ब्याह करके उन्हें दुःख देना नहीं चाहती । ब्याह सबके लिए नहीं होता । जानती हो, मा, जिनका मन बहमी होता है वे आदमीमेंसे कुछ-कुछ काट-छाँटकर उसे खण्डित करके अपने मनकी चीज चुन लिया करते हैं । किन्तु ब्याहके जालमें फँसकर तो स्त्री-पुरुष बहुत ज्यादा नजदीक आ जाते हैं, बीचमें व्यवधान ही नहीं रहता ; और तब बिल्कुल पूरे आदमीसे कारबार करना पड़ता है, बिल्कुल पास रहकर । कोई भी एक अंश वहाँ ढका नहीं रह सकता ।”

“लावण्य, तुम अपनेको पहचानती नहीं । तुम्हें लेनेमें कुछ काटने-छाँटने और अलग करनेकी जरूरत ही नहीं होगी ।”

“किन्तु वे तो मुझे नहीं चाहते, मैं जो साधारण स्त्री हूँ, घरकी नारी ! उसे उन्होंने देखा हो, ऐसा तो मुझे नहीं मालूम होता । ज्योंही मैंने उनके मनको छुआ है त्योंही उनका मन अविराम और असीम बातें कर उठा है । उन बातोंसे वे बराबर मुझे गढ़ते चले गये हैं । उनका मन अगर थक गया, उनकी बातें अगर खतम हो गईं, तो उस नीरवतामें पकड़ाई देगी यह अति साधारण नारी, जो उनकी अपनी सृष्टि नहीं । ब्याह करनेसे साथीको स्वीकार कर लेना पड़ता है, फिर उसमें गढ़ने-बनानेका अवकाश ही नहीं मिलता ।”

“तुम्हें ऐसा मालूम होता है क्या, कि अमित तुम-जैसी लड़कोको भी पूरी तरह स्वीकार न कर सकेगा ?”

“स्वभाव अगर बदल जाय तो कर सकेंगे । किन्तु बदले भी क्यों ? मैं तो ऐसा नहीं चाहती ।”

“तुम क्या चाहती हो ?”

“जितने दिन बन सके, न-हो-तो उनकी बातोंके साथ ही उनके मनके खेलके साथ ही घुल-मिलकर स्वप्न बनकर रहूँगी । और, उसे स्वप्न ही क्यों कहूँ ? वह मेरा एक विशेष जन्म है, एक विशेष रूप है, क्योंकि एक विशेष

जगत्में वह सत्य होकर दिखाई दिया है। फिर चाहे वह कोषसे निकली हुई दो-चार दिनकी रंगीन तितली ही क्यों न हो, उसमें दोष क्या है। दुनियामें तितली और-किसीसे कुछ कम सत्य हो, ऐसी तो कोई बात नहीं, भले ही वह सूर्योदयके प्रकाशमें दिखाई दे और सूर्यास्तके झुटपुटेमें मर जाय, इससे क्या, देखना सिर्फ इतना ही है कि उतना समय व्यर्थ न हो जाय।”

“इतना तो समझ लिया कि तुम अमितके लिए क्षण-भरकी मायाके रूपमें ही रहों। मगर, खुद ? तुम भी क्या व्याह करना नहीं चाहती ? तुम्हारे लिए अमित भी क्या माया है ?”

लावण्य चुप बैठी रही, कुछ जवाब नहीं दिया।

योगमाया कहती गई, “तुम जब बहस करती हो तब मैं समझ जाती हूँ कि तुम बहुत-किताब-पढ़ी-हुई लड़की हो। तुम्हारी तरह मैं सोच भी नहीं सकती, और न बात ही कर सकती हूँ। सिर्फ इतना ही नहीं, हो सकता है कि ऐसे कामके मौकेपर भी इतनी कड़ी न रह सकूँ। किन्तु बहसकी संधमेंसे भी तो मैंने तुम्हें देखा है, बेटी ! उस दिन रातके लगभग बारह बजे होंगे,—देखा कि तुम्हारे कमरेमें बत्ती जल रही है, भीतर जाकर देखा कि अपनी टेबिलपर झुककर दोनों हाथोंपर मुँह रखके तुम रो रही हो। उस दिनकी वह लड़की तो फिलॉसॉफी-पढ़ी लड़की नहीं थी। एक बार सोचा कि सान्त्वना दूँ, फिर सोचा कि सभी लड़कियोंको रोनेके दिनोंमें रो लेना चाहिए, उसे दबाने जाना व्यर्थ है। इस बातको मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि तुम सृष्टि करना नहीं चाहती, प्रेम करना चाहती हो। आखिर हृदय-मनसे सेवा न कर सकीं तो तुम जीओगी कैसे ? इसीसे तो कहती हूँ, उसे अपने पास बिना पाये तुम्हारा काम नहीं चल सकता। सहसा ऐसा कोई प्रण न कर बैठना, बेटी, कि ‘व्याह न करूँगी।’ एक बार तुम्हारे मनमें कोई जिद्द चढ़ जाय तो फिर तुम्हें सीधा नहीं किया जा सकता। डर तो मुझे इसी बातका है।”

लावण्य कुछ बोली नहीं। सिर झुकाये गोदपर साड़ीका पल्ला रखके उसे दबा-दबाकर अनावश्यक तह करने लगी। योगमाया कहती गई, “तुम्हें

देखके मुझे कितनी ही बार ऐसा लगा है कि ज्यादा पढ़-पढ़के ज्यादा सोच-सोच के तुम्हारा मन बहुत ज्यादा सूक्ष्म हो गया है। तुमलोगोंने भीतर-ही-भीतर जो-सब भाव गढ़ लिये हैं हमलोगोंकी दुनिया उसके लायक नहीं। हमलोगोंके समयमें मनके जो प्रकाश अदृश्य थे, तुमलोग आज मानो उन्हें भी छुटकारा नहीं देना चाहतीं। वे आज देहके मोटे आवरणको भेदकर देहको मानो अगोचर किये दे रहे हैं। हमलोगोंके जमानेमें मनके मोटे-मोटे भावोंको लेकर संसारमें काफी सुख-दुःख था ; और समस्याएँ भी कुछ कम नहीं थीं। पर तुमलोगोंने आज उन्हें इतना बढ़ा लिया है कि सहज-स्वाभाविक अब कुछ रखा ही नहीं।”

लावण्य जरा हँस दी। अभी उस दिनकी बात है कि अमित अदृश्य प्रकाशकी बातें योगमायाको समझा रहा था। उसीसे यह युक्ति उनके दिमागमें आई है, यह भी तो सूक्ष्म है, योगमायाकी मा ये बातें इस तरह नहीं समझती थीं। लावण्यने कहा, “मा, कालकी गतिसे मनुष्यका मन जितनी ही स्पष्टतासे सब बातें समझता जायगा उतनी ही कठोरतासे वह उसके धक्के भी सहने लगेगा। अन्धकारका दुःख असह्य है, क्योंकि वह अस्पष्ट है।”

योगमायाने कहा, “आज मुझे मालूम हो रहा है कि तुम-दोनोंकी कभी भेंट ही न होती तो अच्छा होता।”

“नहीं-नहीं, ऐसा मत कहो। जो हुआ है उसके सिवा और-कुछ हो सकता था, ऐसा मैं सोच ही नहीं सकती। किसी समय मेरा दृढ़ विश्वास था कि मैं बिल्कुल ही शुष्क हूँ, किताबें पढ़ूंगी और परीक्षा पास करूँगी, इसी तरह मेरा जीवन बीत जायगा। किन्तु आज अकस्मात् देखा कि मैं भी प्रेम कर सकती हूँ। मेरे जीवनमें भी ऐसी असम्भव बात सम्भव हो गई, यही मेरे लिए काफी है। मालूम होता है अब तक मैं छायी थी, असत्य हो गई हूँ। इससे ज्यादा और क्या चाहिए। मुझे ब्याह करनेको न कहना, मा।”

इतना कहकर लावण्य चौकीसे नीचे उतरकर योगमायाकी गोदमें सिर रखके रोने लगी।

६- गृह-परिवर्तन

शुरूमें सभीका खयाल था कि अमित पन्द्रह दिनके भीतर कलकत्ता लौट आयेगा। नरेन्द्र मित्रने जबरदस्त शर्त बदी थी कि 'सात दिन भी वहाँ नहीं बीत पायेंगे।' पर, एक महीना गया, दूसरा महीना भी गया, लौटनेका नाम ही नहीं ! शिलांगके मकानकी मियाद बीत चुकी थी। रंगपुरका कोई जमींदार आया और उसपर वह अपना दखल जमा बैठा। बहुत तलाश करनेके बाद योगमायाके मकानके पास एक झोंपड़ा-सा घर मिला है। किसी समय वह ग्वाला या मालीका घर था, उसके बाद वह एक क्लर्कके हाथ पड़ा, और तब उसमें गरीबी भद्रताका कुछ ताव लगा। वह क्लर्क भी मर चुका है, उसकी विधवा स्त्री अब उसे किरायेपर उठाती है। दरवाजे-जंगलोंकी कंजूसीके कारण उस घरके अन्दर तेज-मरुत्-व्योम इन तीनों भूतोंका अधिकार संकुचित है, केवल बरसातके दिनोंमें आशातीत प्राचुर्यके साथ 'अप्' अवतीर्ण होता है, अख्यात द्विद्रपथोंसे।

घरकी हालत देखकर योगमाया एक दिन चौंक उठी। बोलीं, "बेटा, अपने ऊपर यह कैसी परीक्षा कर रहे हो?"

अमितने उत्तर दिया, "उमाकी थी निराहारकी तपस्या; और अन्तमें उन्होंने पत्ते खाना भी छोड़ दिया था। मेरी है यह निर-असवाबकी तपस्या। खाट-पलंग और टेबिल-कुरसी छोड़ते-छोड़ते अब लगभग शून्य दीवारपर नौबत आ पहुँची है। उमाकी तपस्या हुई थी हिमालय-पर्वतपर, और मेरी हो रही है शिलांग-पहाड़पर। उसमें कन्याने माँगा था 'वर', इसमें वर माँग रहा है 'कन्या'। वहाँ नारद घटक थे, यहाँ हैं स्वयं मौसीजी। अब अन्त तक अगर किसी कारणसे कालिदास न आ पहुँचे, तो लाचार होकर मुझे ही उनका काम यथासम्भव पूरा करना होगा।"

अमितने हँसते हुए ये बातें कहीं, किन्तु योगमायाके हृदयको चोट पहुँची। वे कहने-ही-वाली थीं कि 'चलो, हमारे ही घर चलके रहो', किन्तु रुक गईं। सोचा कि विधाता एक काण्ड रच रहे हैं, उसमें हमलोगोंका हाथ लगनेसे कहीं असाध्य उलझन न पड़ जाय। उन्होंने अपने यहाँसे थोड़ा-बहुत सामान

भेज दिया, और उसके साथ-साथ इस अभागेपर उनकी कृपा भी दूनी बढ़ गई। लावण्यसे उन्होंने बार-बार कहा, “बेटी लावण्य, मनको पत्थर न बनाये डालो।”

एक दिन, बहुत जोरकी वर्षाके बाद, योगमाया अमितकी खबर - सुध लेने गई तो देखा कि चार-पायेदार एक लचर टेबिलके नीचे कम्बल बिछाकर अमित अकेला बैठा कोई अंगरेजी-किताब पढ़ रहा है। कोठरीमें जहाँ-तहाँ बरसातकी बूँदोंका असङ्गत आविर्भाव देखकर टेबिलके नीचे उसने एक गुफा-सी बना ली थी, और उसके नीचे वह पैर फैलाकर बैठा था। पहले अपने-आप ही हँस लिया एक चोट, उसके बाद चलने लगी काव्यालोचना। मन दौड़ रहा था योगमायाके घरकी ओर, किन्तु शरीरने दी बाधा। कारण, जहाँ कोई जरूरत ही नहीं पड़ती उस कलकत्तेमें उसने खरीदी थी एक बहुत कीमती बरसाती, और जहाँ हमेशा ही उसकी जरूरत है वहाँ आते समय वह उसे लाना भूल गया था। एक छतरी साथ थी, उसे सम्भवतः एक दिन किसी सङ्कल्पित गम्य-स्थानमें ही छोड़ आया है; और अगर ऐसा न हुआ हो, तो वह शायद घरकी किसी बूढ़ी दीवारके नीचे कहीं पड़ी होगी।

योगमाया घरमें घुसते ही बोली, “यह क्या हाल है, अमित?”

अमित झटपट टेबिलके नीचेसे बाहर निकल आया; बोला, “मेरा घर आज असम्बद्ध प्रलापमें उन्मत्त हो रहा है, इसकी दशा भी मुझसे कुछ ज्यादा अच्छी नहीं है।”

“असम्बद्ध प्रलाप?”

“अर्थात् इस घरके छप्परको करीब-करीब भारतवर्ष कहा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी। उसके अङ्गों और प्रत्यङ्गोंमें परस्परके सम्बन्ध ढीले हो गये हैं। इसीसे ऊपरसे कोई उपद्रव होनेपर चारों तरफ विशृङ्खल अश्रुवर्षण होता रहता है, और बाहरकी तरफसे अगर कहीं आँधीकी झपट लगे तो साँय-साँय करके दीर्घश्वास चलने लगता है। मैंने तो प्रोटेस्टके तौरपर सिरके ऊपर एक मश्र खड़ा कर रखा है, घरकी मिस-गवर्मेण्टके बीच निरुपद्रव होमरूलके दृष्टान्तके बतौर। पॉलिटिक्सकी एक मूल-नीति यहाँ प्रत्यक्ष मौजूद है।”

“मूल-नीति क्या है, बताओ तो समझूँ।”

“यही कि जो घरवाला घरमें वास नहीं करता वह चाहे जितना बड़ा शक्तिशाली क्यों न हो, उसके शासनकी अपेक्षा जो गरीब अपने बसे-हुए घरमें रहता है उसकी गई-बीती हालत भी अच्छी है।”

आज लावण्यपर योगमायाको बहुत गुस्सा आया। अमितपर उनका स्नेह जितना ही गहराईके साथ बढ़ता जाता है उतना ही वे अपने मनमें उसकी मूर्ति खूब ऊँची बनाती चली जा रही हैं,—‘इतनी विद्या, इतनी बुद्धि, इतनी परीक्षा-पास, और उसपर इतना सीधा-सादा मन ! ढंगके साथ बात करनेकी वैसी असाधारण शक्ति है उसमें ! और अगर चेहरेकी बात कहो, तो मेरी दृष्टिमें तो लावण्यसे इसका चेहरा ज्यादा सुन्दर लगता है। लावण्यका भाग्य अच्छा है, अमितने किसी ग्रहके फेरमें आकर ही उसे इस तरह मुग्ध दृष्टिसे देखा है। ऐसे सोनेके चाँद-जैसे लड़केको लावण्य इस कदर दुःख दे रही है ! चटसे वह कह बैठी कि ब्याह नहीं करेगी ! जैसे वह कोई राजराजेश्वरी हो ! ‘धनुष तोड़ने’की-सी प्रतिज्ञा ! इतना अहङ्कार सहन कैसे होगा ! मुँहजलीको पीछे रो-रोकर मरना होगा।’

एक बार योगमायाने सोचा कि अमितको गाड़ीमें बिठाकर अपने घर ले जायें। फिर, न-जाने क्या सोचकर बोलीं, “जरा बैठो, बेटा, मैं अभी आ रही हूँ।”

घर पहुँचते ही देखा कि लावण्य अपने कमरेमें सोफेपर आरामसे बैठी पैरोंपर दुशाला डाले गोर्कीको ‘मा’ पढ़ रही है। उसकी इस आरामतलबीको देखकर मन-ही-मन उनका गुस्सा और-भी बढ़ गया। बोलीं, “चलो जरा घूम आयें।”

लावण्यने कहा, “आज बाहर निकलनेको जी नहीं चाहता, मा !”

योगमाया ठीक समझ न सकी कि लावण्यने स्वयं अपने-आपसे भागकर पुस्तककी उस कहानीमें आश्रय लिया है। दोपहर-भर, खानेके बादसे ही, उसके मनमें एक तरहकी अस्थिर प्रतीक्षा-सी हो रही थी कि कब आये अमित। बार-बार मन उसका कह रहा है, ‘अब आ ही रहे होंगे।’ बाहर जोरकी हवा

चल रही है, उसके ऊधमसे पाइनके पेड़ छटपटा रहे हैं, और जबरदस्त वर्षासे हालके-पैदा-हुए झरने ऐसे चञ्चल हो उठे हैं कि मानो अपनी मियादके समयके साथ ही वे साँस रोकके दौड़ रहे हों। लावण्यके भीतर एक इच्छा अशान्त हो उठी है, वह चाहती है कि जाने दो, सब बाधाओंको टूट जाने दो। अमितके दोनों हाथ पकड़के वह कह देना चाहती है, 'जन्म-जन्मान्तरमें मैं तुम्हारी ही हूँ।' आज कहना उसके लिए सहज है। सारा आकाश आज जान हथेलीपर रखकर हू-हू करके न-जाने क्या कह रहा है जिसका ठीक नहीं! उसीकी भाषासे आज वन-वनान्तरको भाषा मिल गई है, वर्षा-धारामें बचे-खुचे गिरिशृङ्ग आज आकाशमें कान बिछाये खड़े हैं। काश, इसी तरह कोई सुनने आये लावण्यकी बात, ऐसा ही बड़ा होकर, स्तब्ध होकर, ऐसे ही उदार मनोयोगके साथ। किन्तु, पहरपर पहर बीतते गये, कोई आया ही नहीं। ठीक मनकी-बात-कहनेका लग्न जो निकला जा रहा है। इसके बाद जब कोई आयेगा तब उसे बात ही नहीं सूझेगी, तब संशय आ जायगा मनमें, तब ताण्डव-नृत्योन्मत्त देवताका 'माभैः'-रव आकाशमें विलीन हो जायगा। वर्षके बाद वर्ष चुपचाप नीरवतामें बीत जाते हैं, उसके बीच वाणी एक दिन विशेष किसी प्रहरमें सहसा मनुष्यके द्वारपर आकर किवाड़ खटखटाती है। उसी समय किवाड़ खोलनेकी चाभी अगर ढूँढ़े नहीं मिली, तब फिर और किसी भी दिन मनकी बात अकुण्ठित स्वरमें कहनेकी दैव-शक्ति नहीं जुट सकती। जिस दिन वह वाणी आती है उस दिन सारे संसारको एकत्र करके संवाद देनेकी इच्छा होती है कि 'सुन लो तुमलोग, मैं प्रेम करती हूँ। मैं प्रेम करती हूँ',—यह बात अपरिचित सिन्धु-पार-गामी पक्षीकी तरह, न-जाने कितने दिनोंसे, कितनी दूरसे आ रही है। इसी बातके लिए तो मेरे हृदयमें मेरे इष्टदेवता इतने दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे। उस बातने आज मुझे स्पर्श किया है। मेरा सारा जीवन, मेरा सम्पूर्ण जगत् सत्य हो उठा है आज।' तत्कियामें मुँह छिपाकर लावण्य आज किससे ऐसी बातें करने लगी, 'सत्य है, सत्य है, इतना सत्य और-कुछ भी नहीं।'।

समय चला गया, अतिथि नहीं आया। प्रतीक्षाके भारी बोझसे छातीके

भीतर दद होने लगा, बरामदेमें जाकर लावण्य थोड़ा-सा भींग आई पानीकी बौछार लगाकर । उसके बाद एक गहरे अवसादने आकर उसके मनको ढक दिया एक निविड़ निराशासे । ऐसा लगा कि उसके जीवनमें जो-कुछ जलनेका था वह सिर्फ एक बार भक-से जलकर फिर बुझ गया, सामने कुछ भी नहीं है । अमितको अपने भीतरके सत्यकी दुहाई देकर सम्पूर्ण - रूपसे स्वीकार कर लेनेका साहस उसका जाता रहा । बहुत देर तक चुपचाप पड़े रहनेके बाद अन्तमें उसने टेबिलसे किताब उठा ली । कुछ समय लगा उसमें मन लगानेमें, उसके बाद कहानीकी धारामें प्रवेश करके कब अपनेको भूल गई, उसे मालूम भी नहीं पड़ा ।

इतनेमें योगमायाने बुलाया घूमने जानेके लिए । उसे उत्साह ही नहीं हुआ जानेका ।

योगमाया एक कुरसी खींचकर लावण्यके सामने बैठ गई ; और अपनी दीप्त दृष्टि उसके मुँहपर रखती-हुई बोलीं, “सच्ची बात बताओ, लावण्य, तुम क्या अमितसे प्रेम करती हो ?”

लावण्य चटसे उठके बैठ गई, बोली, “ऐसी बात क्यों पूछ रही हो, मा ?”

“अगर नहीं करती प्रेम, तो, उसे साफ-साफ कह क्यों नहीं देती ? निष्ठुर हो तुम । अगर नहीं चाहती हो, तो उसे पकड़के मत रखो ।”

लावण्यके छातीके भीतर उफान-सा उठने लगा, उसके मुँहसे बात नहीं निकली ।

योगमाया कहती गई, “अभी-अभी उसकी जो दशा देख आई हूँ मैं, उससे छाती फटती है मेरी तो । ऐसे भिखारीकी तरह किसके लिए यहाँ पड़ा है वह ! उस जैसा लड़का जिसे चाहता है वह कितनी बड़ी भाग्यवती है, सो क्या बिलकुल ही नहीं समझ सकतीं तुम ?”

कोशिश करके रुँधे-हुए गलेकी बाधाको दूर करती-हुई लावण्य कह उठी, “मेरे प्रेम करनेकी बात पूछ रही हो, मा ? मैं तो सोच ही नहीं सकती कि ऐसी कोई दुनियामें है जो मुझसे भी ज्यादा प्रेम कर सकती है । प्रेममें मैं तो मर सकती हूँ । इतने दिनोंसे मैं जो-कुछ थी, उसका सब-कुछ लुप्त

हो गया है आज । अबसे मेरा फिरसे आरम्भ हो रहा है, इस आरम्भका अन्त नहीं है । मेरे अन्दर यह कितना बड़ा आश्चर्य है सो मैं कैसे समझाऊँ किसीको ! और-किसीने क्या इस तरहसे जाना है ?”

योगमाया आश्चर्यसे अवाक् हो गई । सदासे देखती आई हैं वे लावण्य में गहरी शान्ति,— इतना बड़ा दुःसह आवेग उसमें कहीं छिपा था अब तक ?

उससे वे धीरेसे बोलों, “बेटी लावण्य, अपनेको दबा-छिपाकर मत रखो । अमित अंधेरेमें तुम्हें ढूँढ़ता फिर रहा है, पूरी तरह तुम अपनेको उसके आगे जता दो । डरती क्यों हो,— डरो मत । जो प्रकाश तुम्हारे अन्दर जल रहा है वह प्रकाश अगर उसकी दृष्टिमें भी प्रकट हो जाता तो उसके लिए फिर कोई अभाव ही न रह जाता । चलो, बेटी, तुम अभी चलो मेरे साथ ।”

और दोनों अमितके घर चल दीं ।

१०—द्वितीय साधना

अमित उस समय भीगी चौकीपर पुराने अखबारोंकी रद्दी लादकर उसके ऊपर बैठा था । टेबिलपर एक दस्ता फुलस्केप कागज रखके उसकी लिखाई चल रही थी । ठीक इसी समय उसने अपनी विख्यात आत्म-जीवनी लिखना शुरू किया था । कारण पूछनेपर वह कहता है कि ठीक इसी समय उसका जीवन अकस्मात् उसकी अपनी दृष्टिमें दिखाई दिया नाना रंगोंमें रंगा-हुआ, बदलीके दूसरे दिनके सवेरेके शिलाँग-पहाड़के समान, इसी दिन तो अपने अस्तित्वका एक मूल्य मिला था उसे,— इस बातको प्रकट बगैर किये वह रह कैसे सकता है ? वह कहता है, ‘मनुष्यकी मृत्युके बाद उसकी जीवनी लिखी जाती है, इसका कारण यह है कि एक ओर संसारमें वह मरता है और दूसरी ओर मनुष्यके मनमें वह निविड़ होकर जी उठता है ।’ अमितके मनका भाव यह है कि जब वह शिलाँगमें था तब एक ओर जैसे वह मरा था, उसका अतीत मरीचिकाकी तरह विलीन हो गया था, उसी तरह, दूसरी ओर वह तीव्र होकर जी उठा था ; और तब पीछेके अन्धकारपर उज्ज्वल प्रकाशकी तसवीर प्रकट हो उठी थी । इस प्रकाशके संवादको रख ही जाना चाहिए । क्योंकि

संसारमें बहुत कम आदमियोंके भाग्यमें ऐसा बदा होता है। असलमें वे तो जन्मसे लेकर मृत्युकाल तक प्रदोषकी छायामें ही अपना जीवन बिता जाते हैं, उस चमगादड़की तरह जो गुफामें अपना घोंसला बना लेता है।

तब थोड़ी-थोड़ी वर्षा हो रही थी, आँधीकी हवा बन्द हो चुकी थी और बादल पतले हो आये थे।

अमित चौकी छोड़कर उठ खड़ा हुआ। बोला, “यह कैसा अन्याय है, मौसीजी !”

“क्यों, बेटा, क्या किया मैंने ?”

“मैं जो बिलकुल अप्रस्तुत था। श्रीमती लावण्य अपने मनमें क्या सोचेंगी ?”

“श्रीमती लावण्यको तो जरा सोचने देना ही आवश्यक हैं। जो बात जाननेकी है उसे पूरी तरह जान लेना अच्छा है। इसमें श्रीमान् अमितको इतनी आशङ्का क्यों ?”

“श्रीमान्का जो-कुछ ऐश्वर्य है वही श्रीमतीको जतानेका है। और श्रीहीनका जो दैन्य है उसे जाननेके लिए तुम हो, मेरी मौसीजी !”

“ऐसी भेद-बुद्धि क्यों, बेटा ?”

“अपनी गरजसे ही है। ऐश्वर्यसे ही ऐश्वर्यपर दावा किया जाता है। और, अभावसे चाहता हूँ मैं आशीर्वाद। मानव-सभ्यतामें लावण्य देवियोंने जगाया है ऐश्वर्य, और मौसियोंने दिया है आशीर्वाद।”

“देवी और मौसी दोनोंको एकसाथ ही पाया जा सकता है, अमित ! इसके लिए अभावको ढकनेकी जरूरत नहीं पड़ती।”

“इसका जवाब कविकी भाषामें देना पड़ेगा। गद्यमें जो-कुछ कहता हूँ मैं, उसे स्पष्ट समझानेके लिए कृन्दके भाष्यकी जरूरत पड़ती है। मैथ्यू अर्नल्डने काव्यको बताया है ‘क्रिटिसीज्म ऑफ् लाइफ’।^१ मैं उस वाक्यको जरा संशोधन करके कहना चाहता हूँ, ‘लाइफ्स् कॉम्पेण्टरी इन वर्स’।^२

१ जीवनकी समालोचना या गुण-दोष-विवेचन।

२ कृन्दमें जीवन-भाष्य अर्थात् कवितामें जीवनकी व्याख्या।

अतिथि-विशेषको पढ़लेसे ही जताये रखता हूँ कि मैं जो पढ़ रहा हूँ वह किसी कवि-सम्राट्का लिखा हुआ नहीं है—

परिपूर्ण मनकी चाहना हो,
कुछ माँगनेकी कामना हो,
माँगो भले ही जा कहीं,
पर, हाथ हों खाली नहीं,
आँख हों आली नहीं ।

सोच देखियेगा, प्रेम ही पूर्णता है, उसकी जो आकांक्षा है वह तो दरिद्रका कंगलापन नहीं । देवता जब भक्तको प्यार करते हैं तभी वे आते हैं भक्तके द्वारपर भीख माँगने ।

गलेकी रत्नमाला ही
बनेगी वरमाला जब
बदल लुंगा माला तब ।
क्या नहीं बिछाओगी
देवीका आसन तुम
राहके किनारे एक
सूनी सूखी धूलपर ?

इसीलिए तो फिलहाल देवीको जरा हिसाबसे घरमें प्रवेश करनेको कहा था । बिछानेको कुछ है ही नहीं तो बिछाऊँ क्या ? ये भीगे अखबार ? आजकल सम्पादकीय स्याहीके दागोंसे मैं सबसे ज्यादा डरता हूँ । कवि कहते हैं, 'बुलाने योग्य आदमीको तब बुलाता हूँ जब जीवनका प्याला छलक उठता है, उसे तृष्णामें शरीक होनेको नहीं बुलाता ।'

चैतकी हवामें फूल
खिले हों वन-विधिकामें,
रखना बाँध प्रियतमको तुम
अपनी हृदय-बाटिकामें, जलती हो दीप-माला
दीप्त लक्ष शिखामें जब निशीथ-अन्धकारमें ।

मौसियोंकी गोदमें जीवनके प्रारम्भमें ही मनुष्यकी प्रथम तपस्या होती है दरिद्रताकी, नम्र संन्यासीकी स्नेह-साधना । इस कुटियामें उसीका कठोर आयोजन है । मैंने तो तय कर रखा है, इस कुटियाका नाम रखूंगा, 'मौसेरा बंगला' ।”

“बेटा, जीवनकी दूसरी तपस्या है ऐश्वर्यकी, देवीको बाईं ओर लेकर प्रेम-साधना । इस कुटियामें भी तुम्हारी वह साधना गीले कागजोंके नीचे दब नहीं जायगी । ‘वर नहीं मिला’—कहके अपनेको बहला रहे हो तुम । किन्तु मनमें निश्चित जानते हो कि मिल चुका है ।”

इतना कहकर उन्होंने लावण्यको अमितके बगलमें खड़ा किया और उसका दाढ़ना हाथ अमितके दाढ़ने हाथपर रख दिया । फिर लावण्यके गलेसे सोनेका हार खोलकर उससे दोनोंके हाथ बाँधती-हुई बोलीं, “तुम दोनोंका मिलन अक्षय बना रहे ।”

अमित और लावण्य दोनोंने मिलकर योगमायाके पाँव छुए और पद धूलि सिरसे लगाते-हुए प्रणाम किया । योगमायाने कहा, “तुमलोग बैठो जरा, मैं बगीचेसे कुछ फूल ले आऊँ ।”

इतना कहकर वे फूल लेने चली गईं । बहुत देर तक दोनों खाटपर आस-पास चुप बैठे रहे । किसी एक समय अमितके मुँहकी ओर मुँह उठाकर लावण्यने मृदु स्वरमें कहा, “आज तुम दिन-भर आये क्यों नहीं ?”

अमितने उत्तर दिया, “कारण इतना ज्यादा तुच्छ है कि आजके दिन उसे मुँहसे कहनेके लिए साहसकी जरूरत है । इतिहासमें कहीं भी ऐसा लिखा नहीं मिलता कि हाथके पास ‘बरसाती’ न मिलनेसे बदलीके दिन किसी प्रेमीने प्रियाके पास जाना मुलतबी रखा हो ।” बल्कि, तैरकर अगाध जल-भरी नदी पार करके पहुँचनेकी बात तो लिखी है । किन्तु, वह है अन्तरका इतिहास, वहाँके समुद्रमें मैं भी क्या नहीं तैर रहा समझती हो ? उस अपारको क्या कभी पार कर सकूँगा ?

For we are bound where mariner has not yet dared to go,
And we will risk the ship, ourselves and all.

हम जायेंगे वहीं
जहाँ साहससे
नाविक कोई गया नहीं,
डूबें तो डूब जायँ,
हम भी और नाव भी,
इसकी परवाह नहीं।

वन्या, मेरे लिए आज तुमने प्रतीक्षा की थी ?”

“हाँ, मीता, वर्षाकी रिमझिममें आज दिन-भर तुम्हारे पैरोंकी आहट सुनती रही हूँ। मालूम होता था कि इतने असम्भव-दूरसे आ रहे हो तुम कि जिसका ठीक नहीं। आखिर आ ही पहुँचे मेरे जीवनमें।”

‘वन्या, अब तक मेरे जीवनके बीचो-बीच तुम्हें न-जाननेका एक बड़ा-भारी काला गड्ढा था। वहीं था सबसे ज्यादा भद्दा। आज वह ऊपर तक भर आया है, और उसके ऊपर उजाला झलमला रहा है, सम्पूर्ण आकाशकी छाया पड़ती है उसपर; और आज वही जगह हो गई है सबसे बढ़कर सुन्दर। यह जो मैं लगातार बात करता ही चला जा रहा हूँ, यह है उस परिपूर्ण प्राण-सरोवरकी तरङ्ग-ध्वनि, इसे रोक कौन सकता है !”

“मीता, तुम आज दिन-भर क्या कर रहे थे ?”

“मनके बीचो-बीच तुम थीं, बिलकुल निस्तब्ध। तुमसे मैं कुछ कहना चाहता था, पर कहाँ, वह बात थी कहाँ। आकाशसे पानी पड़ रहा था, और मैं बराबर यही कह रहा था, ‘वाणी दो, वाणी दो !’ —

O what is this ?

Mysterious and uncapturable bliss
That I have known, yet seems to be
Simple as breath and easy as a smile,
And older than the earth.

कैसा रहस्य यह, कैसा आनन्द-पुञ्ज !
जाना है उसे मैंने, पाया नहीं पाकर भी।

फिर भी उस हृदयमें उठती उसास है,
 पृथ्वी-सा पुराना और स्वभाव-सा सहज वढ़
 सरलताका हास है ।

बैठा-बैठा यही करता रहता हूँ । दूसरोंकी बातको अपनी बात बनाया करता हूँ । अगर कहीं सुर दे सकता तो सुर लगाकर विद्यापतिके वर्षाके गीतको ज्यों-का-त्यों हड़प कर जाता—

विद्यापति कहे, कैसे गँवायबि

हरि बिन दिन-रतियाँ ।

जिसके बिना चल नहीं सकता उसे पाये बिना कैसे दिन बीतेंगे, ठीक इस बातका सुर पाऊँ कहाँसे ? ऊपरकी ओर ताककर कभी कहता हूँ, 'वाणी दो' और कभी कहता हूँ, 'सुर दो ।' वाणी लेकर, सुर लेकर, देवता उतर भी आते हैं, पर, रास्तेमें आदमी पहचाननेमें भूल कर बैठते हैं, खामखाह और किसीको दे देते हैं । हो सकता है कि तुम्हारे उस रवि ठाकुरको दे बैठे हों ।"

लावण्यने हँसकर कहा, "रवीन्द्रनाथको जो चाहते हैं वे भी तुम्हारी तरह बार-बार इतना याद नहीं करते उन्हें ।"

"वन्या, आज मैं बहुत ज्यादा बक रहा हूँ, न ? मेरे अन्दर बकवासका 'मॉनसून' उतर आया है । वेदर-रिपोर्ट अगर रखो, तो देखोगी कि एक-एक दिनमें कै-कै इश्च पागलपन करता हूँ, कुछ ठीक नहीं । कलकत्ता होता तो मैं तुम्हें मोटरमें लेकर टायर फाड़ता-हुआ सीधा मुरादाबाद भाग जाता । अगर पूँछती कि मुरादाबाद क्यों, तो उसका कोई कारण नहीं बता पाता । बाढ़ जब आती है तब वह बकती है, दौड़ती है, समयको हँसते-हँसते फेनकी तरह बहा ले जाती है ।"

इतनेमें योगमाया डाली भरकर सूर्यमुखी-फूल ले आईं । बोली, "बेटी लावण्य, इन फूलोंसे आज तुम अमिनको प्रणाम करो ।"

यह और-कुछ नहीं, एक अनुष्ठानके भीतरसे हृदयके भीतरकी चीजको बाहर 'शरीर' देनेकी जनानी कोशिश है । 'देह' को बनाकर खड़ी करनेकी आकांक्षा स्त्रियोंके रक्त-मांसमें भरी पड़ी है ।

आज किसी-एक समय अमितने लावण्यके कानमें कहा, “बन्या, मैं तुम्हें एक अंगूठी पहनाना चाहता हूँ।”

लावण्यने कहा, “क्या जरूरत है, मीता?”

“तुमने जो मुझे अपना यह हाथ दिया है वह कितना दिया है, सो मैं सोचकर खतम नहीं कर पाता। कवियोंने प्रियाके मुँहका ही वर्णन किया है। पर, हाथोंमें हृदयका कितना इशारा है! प्रेमका जो-भी कुछ लाड़-प्यार और जो-भी कुछ सेवा है, हृदयका जितना भी दर्द और जितनी भी अनिर्वचनीय भाषा है, सो तो सब इन्हीं हाथोंमें है। मेरी अंगूठी तुम्हारी उंगलीसे लिपटी रहेगी, मेरे मुँहकी एक छोटी-सी बातकी तरह; वह बात सिर्फ इतनी ही कि ‘पा गया’। मेरी यह बात सोनेकी भाषामें, माणिककी भाषामें, तुम्हारे हाथमें बनी रहेगी।”

लावण्यने कहा, “अच्छा, पहना देना।”

“कलकत्तासे मँगाऊँगा,—बताओ, कौन-सा पत्थर तुम्हें पसन्द है?”

“मैं कोई भी पत्थर नहीं चाहती, एक मोती हो तो काफी है।”

“अच्छा, ठीक है। मैं भी मोती पसन्द करता हूँ।”

११—मिलन-तत्त्व

तय हो गया, आगामी अगहन महीनेमें इनका ब्याह होगा। योगमाया कलकत्ता जाकर तैयारियाँ करेंगी।

लावण्यने अमितसे कहा, “तुम्हारी कलकत्ता जानेकी मियाद तो बहुत दिन हुए खतम हो चुकी है। अनिश्चितके बन्धनमें बँधे-हुए तुम्हारे दिन बीत रहे थे। अब छुट्टी है। बिना किसी संशयके चले जाओ। ब्याहसे पहले अब हम-दोनोंकी भेंट न होगी।”

“इतना कड़ा शासन क्यों?”

“उस दिन जिस सहज-आनन्दकी बात कही थी तुमने, उसे सहज बनाये रखनेके लिए।”

“यह तो बहुत ही गहरे ज्ञानकी बात हुई। उस दिन तुम्हें मैंने कवि

समझकर सन्देह किया था ; आज सन्देह करता हूँ कि तुम दार्शनिक हो । क्या खूब कहा ! सहजको सहज बनाये रखनेके लिए कठोर होना पड़ता है । छन्दको सहज करना हो तो यतिको ठीक जगहपर कसके रखना होगा । लोभ ज्यादा है, इसीसे जीवनके काव्यमें कहीं भी यति देनेको जी नहीं चाहता, और, छन्द टूट जानेसे जीवन हो जाता है गीत-हीन बन्धन । अच्छा, कल ही चला जाऊँगा, एकदम अकस्मात् इन भरे-पूरे दिनोंके बीचसे । ऐसा लगेगा जैसे 'मेघनाद-वध' काव्यकी चौककर-खड़ी-हो-जानेवाली कड़ी हो—

चला गया जब यमपुरको

अकालमें ।

शिलांगसे मान लो कि चला गया, पर पत्रामेंसे अगहनका महीना तो फर-से नहीं उड़ जायगा । कलकत्ता जाकर क्या करूँगा, जानती हो ?”

“क्या करोगे ?”

“मौसीजी जब तक ब्याहके दिनोंकी तैयारियाँ करेंगी, मुझे तब तक कर लेना पड़ेगा उसके बादके दिनोंके लिए आयोजन । लोग इस बातको भूल जाते हैं कि दाम्पत्य एक कला है, और, प्रतिदिन उसकी नये-नये ढंगसे रचना करते ही रहना चाहिए । याद है, वन्या, 'रघुवंश'में महाराजा अजने इन्दुमतीका कैसा वर्णन किया है ?”

लावण्यने कहा, “प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ ।”

अमितने कहा, “वह ललित कलाविधि तो दाम्पत्यकी ही है । अधिकांश बर्बर ब्याहको ही समझ लेते हैं हम 'मिलन', इसीसे उसके बादसे मिलनकी इतनी अवहेलना होने लगती है ।”

“मिलनकी कला तुम्हारे मनमें कैसी है, समझा दो । अगर मुझे शिष्या करना चाहते हो, तो आज ही उसका पहला पाठ शुरू हो जाय ।”

“अच्छा तो, सुनो ! इच्छाकृत बाधासे ही कवि छन्दकी सृष्टि करता है । मिलनको भी सुन्दर करना पड़ता है उसे इच्छाकृत बाधासे । बहुमूल्य वस्तुको इतनी सस्ती कर देना कि चाहते ही वह मिल जाय, अपनेको ही ठगना है । क्योंकि कड़ी कीमत देनेका आनन्द भी कुछ कम नहीं होता ।”

“कीमतका कुछ हिसाब भी तो सुनूँ ?”

“ठहरो, उसके पहले मेरे मनमें जो तसवीर बस रही है उसे बता दूँ। गङ्गाका तट है, बगीचा है, डायमण्डहारबरकी तरफ। एक छोट्टेसे स्टीम-लव्ध पर बैठकर वहाँसे दो घण्टेमें कलकत्ता आना-जाना हो सकता है।”

“इसमें कलकत्तेकी क्या जरूरत आ पड़ी ?”

“अभी कोई जरूरत नहीं, सो तो तुम जानती हो। जाता जरूर हूँ मैं बार-लाइब्रेरीमें, पर रोजगार नहीं करता, शतरंज खेला करता हूँ। अटर्नियोंने समझ लिया है कि कामकी कोई गर्ज नहीं, इसीसे उधर ध्यान नहीं। आपसके फ़ैसलेका कोई मामला होता है तो वे उसकी ब्रीफ मुझे दे देते हैं, उससे ज्यादा और कुछ नहीं देते। किन्तु ब्याहके बाद ही दिखा दूँगा कि काम किसे कहते हैं,— जीविकाकी आवश्यकताके लिए नहीं किन्तु जीवनकी आवश्यकताके लिए। आमके भीतर रहती है गुठली, वह न तो मीठी है, न नरम है और न खानेकी चीज है, किन्तु वह ‘कठोर’ ही सारे आमका आश्रय है, उसीपर वह आकार पाता है। कलकत्ता पथरीली गुठली है। अब समझ गई होगी कि उसकी किसलिए जरूरत है। मधुरके भीतर एक कठिनको रखनेके लिए।”

“समझ गई। तब तो मेरे लिए भी जरूरत है। मुझे भी कलकत्ता जाना होगा, दससे पाँच तक काम बजाने।”

“बुराई क्या है। पर मुहल्ला घूमने नहीं, सचमुच काम करनेके लिए।”

“कौनसा काम, बताओ ? बगैर तनखाका ?”

“नहीं नहीं, बगैर तनखाका काम न तो काम है, न छुट्टी, बारह-आने धोखाधड़ी है। चाहो तो तुम लड़कियोंके कालेजमें प्रोफेसरी कर सकती हो।”

“अच्छा, चाहूँगी। उसके बाद ?”

“मैं स्पष्ट देख रहा हूँ, गङ्गाका किनारा है, नीचेसे उठा है एक जटाओं-वाला बहुत पुराना बड़का पेड़। धनपति जब गङ्गाके रास्ते सिंहल गया था तब शायद उसने इसी बरगदसे नाव बाँधकर पेड़-तले रसोई बनाई थी। उसके दक्षिणी किनारेपर काई-शुदा पक्का घाट है, जिसमें दरारें पड़ गई हैं और कहीं-कहींसे कुछ-कुछ धँस भी गया है। उस घाटमें हरे और सफेद रंगकी

हमारी हलकी-सी नाव बँधी-हुई है। उसकी नीली पताकापर सफेद अक्षरोंमें नाम लिखा-हुआ है। - क्या नाम है, तुम ही बता दो ?”

“बताऊँ ? - ‘मिताई’।”

“ठीक नाम हुआ है, ‘मिताई’। मैंने सोचा था, ‘सागरी’; मनमें जरा गर्व भी हुआ था। पर, तुम्हारे आगे हार माननी पड़ी। - बगीचेके बीचसे एक पतली खाड़ी निकल गई है, गङ्गाके हृदय - स्पन्दनके भीतरसे। उसके उस पार है तुम्हारा घर, और इस पार है मेरा।”

“रोज ही तुम क्या तैरकर पार हुआ करोगे, और खिड़कीमें मैं अपना दिया जला रखा करूँगी ?”

“तैरूँगा मन-ही-मन, काठके सेतुके ऊपरसे। तुम्हारे घरका नाम है ‘मानसी’, और मेरे घरका कोई नाम तुम्हें रखना होगा।”

“दीपक।”

“बहुत अच्छा ! नामके लायक एक दीप मैं अपने घरकी चोटीपर बिठा दूँगा। मिलनकी सन्ध्यामें उसमें जलेगी लाल बत्ती, और विच्छेदकी रातमें नीली। कलकत्तेसे वापस आकर रोज तुम्हारी तरफसे एक चिट्ठीकी आशा करूँगा। ऐसा होना चाहिए कि वह चिट्ठी पा भी सकूँ और न भी पा सकूँ। रातके आठ बजे तक अगर न पाऊँ, तो दुर्भाग्यको अभिशाप देकर बर्द्वण्ड रसलकी ‘लॉजिक’ पढ़नेकी कोशिश करूँगा। हमारा नियम होगा, मैं तुम्हारे घर अनाहूत कदापि न जा सकूँगा।”

“और तुम्हारे घर में ?”

“ठीक एक ही नियम हो तो अच्छा है, किन्तु, बीच-बीचमें नियमका व्यतिक्रम होता रहे तो वह असह्य न होगा।”

“नियमका व्यतिक्रम ही अगर नियम न हो उठे, तो तुम्हारे घरकी दशा क्या होगी, जरा सोचो देखो। बल्कि बुरका ओढ़के आया करूँगी मैं।”

“सो मले ही हो, पर मुझे निमन्त्रणकी चिट्ठी चाहिए ही। उस चिट्ठीमें और-कुछ लिखनेकी जरूरत नहीं, सिर्फ किसी-एक कवितासे दो-चार लाइन मात्र लिख देना काफी है।”

“और, मेरे लिए निमन्त्रण बन्द ? मैं जात-बाहर ?”

“तुम्हें महीनेमें एक दिन निमन्त्रण मिलेगा, पूर्णिमाकी रातमें,— चौदह तिथियोंकी खण्डता जिस दिन चरम पूर्ण हो उठेगी ।”

“अब तुम अपनी ‘प्रियशिष्या’को चिट्ठीका एक नमूना दो ।”

“अच्छी बात है ।”— कहकर जेबमेंसे एक नोटबुक निकालकर उसका एक पन्ना फाड़कर उसपर उसने लिख दिया :—

“Blow gently over my garden
Wind of the southern sea
In the hour my love cometh
And calleth me.

चूमके जाना तुम

मेरी वन-भूमिको

दक्षिण-समुद्रके मेरे मृदु समीरण,

उसी शुभ घड़ीमें जब

आयें मेरे प्रियतम,

बुलायेंगे मुझे वे ले-ले नाम अकारण ।”

लावण्यने कागज लौटाया नहीं ।

अमितने कहा, “अब तुम अपनी चिट्ठीका नमूना दो, देखूँ तुम्हारी शिक्षा कहाँ तक आगे बढ़ी ?”

लावण्य एक कागजके टुकड़ेपर कुछ लिखने जा रही थी । अमितने कहा, “नहीं, मेरी इस नोटबुकमें लिखो ।”

लावण्यने लिख दिया :—

“मीता, त्वमसि मम जीवनं, त्वमसि मम भूषणं,
त्वमसि मम भव-जलधि-रत्नम् ।”

अमितने नोटबुकको जेबमें रखते-हुए कहा, “आश्चर्यकी बात यह है कि मैंने लिखी है नारीके मुँहकी बात, और तुमने लिखी है पुरुषकी ! असङ्गत कुछ भी नहीं हुआ । सेमलकी लकड़ी हो या बबूलकी, जब जलती है तो आगका चेहरा एकसा ही हो जाता है ।”

लावण्य बोली, “निमन्त्रण तो दे दिया, उसके बाद ?”

अमितने कहा, “सन्ध्या-तारा उदित हुआ है, ज्वार आई है गङ्गामें, झाड़के पेड़ोंके ऊपरसे हवा निकल गई साँय-साँय करके, बूढ़े बरगदकी जड़से गङ्गाका स्रोत टकराने लगा। तुम्हारे घरके पीछे पद्म-सरोवर है, वहाँ पीछेके दरवाजेके निर्जन घाटपर नहा-धोकर तुम बाल सँवार रही हो। तुम्हारे अलग-अलग दिनके कपड़े अलग-अलग रंगके होंगे। वहाँ मैं यह सोचता-सोचता जाऊँगा कि आजकी सन्ध्याका क्या रंग होगा। मिलनकी जगहका भी कोई ठीक न रहेगा। किसी दिन चम्पाके नीचेवाले चबूतरेपर, किसी दिन छतपर, किसी दिन गङ्गा-किनारेके खुले बरण्डेमें मिलन हुआ करेगा। मैं गङ्गामें नहाकर सफेद मलमलकी धोती और ऊपरसे चादर ओढ़ूँगा, पाँवोंमें होगी हाथी-दाँतकी कामदार खड़ाऊँ। जाकर देखूँगा कि तुम गलीचा बिछाये बैठी हो, सामने चाँदीकी रक्वाबीमें मोटी फूल-माला रखी है, चन्दनकी कटोरीमें चन्दन है, और एक कोनेमें धूपदानमें जल रही है धूप। पूजाकी छुट्टियोंमें कम-से-कम दो महीनेके लिए दोनों जने घूमने जायेंगे। पर, दोनों दो जगह। तुम अगर जाओगी पहाड़पर, तो मैं जाऊँगा समुद्रकी तरफ। — यह है हमारे दाम्पत्य-द्वैराज्यकी नियमावली, तुम्हारे सामने पेश कर दी गई है। अब तुम्हारी क्या राय है, बताओ ?”

“मान लेनेको राजी हूँ।”

“मान लेना और मनमें लेना, दोनोंमें जो फर्क है, वन्या !”

“तुम्हें जिसकी जरूरत है मुझे उसकी जरूरत न भी रहे, तो भी मैं उसमें आपत्ति न करूँगी।”

“जरूरत नहीं है तुम्हें ?”

“नहीं। तुम मेरे चाहे जितने ही पास क्यों न रहो, फिर भी मुझसे बहुत दूर हो। किसी नियमके द्वारा उस दूरीको कायम रखना मेरे लिए बाहुल्य-मात्र है। किन्तु, मैं जानती हूँ, मेरे अन्दर ऐसी कोई भी चीज नहीं जो तुम्हारी निकट-दृष्टिको बिना लज्जाके सह सके, इसीलिए दाम्पत्यमें दो तटोंपर दो विभाग कर देना मेरे लिए निरापद है।”

अमित चौकीसे उठ खड़ा हुआ, बोला, “तुमसे मैं हार नहीं मान सकता,

वन्या ! जाने दो मेरे बगोचेको । कलकत्तेसे बाहर मैं एक कदम भी नहीं हिलूँगा । निरञ्जनके आफिस-वाले मकानमें ऊपरकी एक मंजिल पचहत्तर रुपये महीनेमें किरायेपर ले लूँगा । वहाँ रहोगी तुम, और वहीं रहूँगा मैं । चित्ताकाशमें पास और दूरका कोई भेद नहीं । साढ़े-तीन हाथ चौड़े बिस्तरपर बाईं तरफ तुम्हारा विभाग रहेगा 'मानसी', और दाहिनी तरफ मेरा विभाग रहेगा 'दीपक' । कमरेकी पूरबवाली दीवारसे सटा-हुआ एक ढाँवर-वाला आईना रहेगा, उसमें तुम भी मुँह देखोगी और मैं भी । पश्चिमकी तरफ रहेगी दो पाठकोंकी एकमात्र सक्थुलेटिंग-लाईब्रेरी । कमरेके उत्तरकी तरफ एक सोफा रहेगा,— उसके बाईं तरफ थोड़ी-सी जगह छोड़कर एक किनारेसे मैं बैठूँगा, और अपनी कपड़ोंकी अरगनीकी ओटमें तुम खड़ी होगी, दो हाथ दूर । निमन्त्रणकी चिट्ठी मैं ऊपरकी ओर उठाऊँगा काँपते-हुए हाथसे, उसमें लिखा रहेगा :— मेरी छतपर चुपके-चुपके

बहा करे दक्षिणी पवन,

हो जाय प्रेयसीसे मेरी

आँख-चारकी प्रिय चितवन ।

क्या यह सुननेमें बुरी लगी, वन्या ?”

“जरा भी नहीं, मीता ! — पर, यह संग्रह कहाँसे की गई है ?”

“अपने मित्र नीलमाधवकी कापीसे । उसकी भावी प्रेयसी तब अनिश्चित थी । उसीको लक्ष्य करके उसने इस अंग्रेजी कविताको कलकतिया ढाँचेमें ढाला था, साथमें मैं भी शरीक था । इकॉनॉमिक्समें एम० ए० पास करके नगद पन्द्रह हजार रुपये और अस्सी तोले सोनेके गहनोंका दहेज लेकर हजरत नववधूको घर लाये थे । चार-आँखोंकी प्रिय चितवन भी हुई और दक्षिणी हवा भी बहती रही ; किन्तु, बेचारा अपनी उस कविताको काममें न ला सका । लिहाजा, अब उसके दूसरे साम्नीदारको सर्वाधिकार समर्पण करनेमें उसे कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए ।”

“तुम्हारी भी छतपर दक्षिणी हवा चलेगी । किन्तु तुम्हारी नववधू क्या चिरकाल नववधू ही बनी रहेगी ?”

सुनते ही अमित टेबिलपर जोरका मुक्का जमाता-हुआ ऊँचे स्वरमें बोल उठा, “रहेगी, रहेगी, रहेगी।”

योगमाया बगलके कमरेसे दौड़ी आई, और पृच्छने लगी, “क्या रहेगी, अमित ? — मेरी टेबिल तो शायद अब नहीं रहेगी।”

“इस जगत्में जो-भी-कुछ टिकाऊ है, सब रहेगा। संसारमें नववधू दुर्लभ है, किन्तु लाखोंमें एक भी यदि दैवसे मिल जाय तो वह चिरकाल नववधू ही रहेगी।”

“एक दृष्टान्त तो बताओ, देखूँ ?”

“एक दिन समय आयेगा, तब दिखा दूँगा।”

“शायद उसके आनेमें अभी कुछ देर है, तब तक, चलो, खा लो।”

१२—शेष संध्या

भोजनके बाद अमितने कहा, “कलकत्ता जा रहा हूँ, मौसीजी ! घरके सब सन्देश करने लगे हैं कि यहाँ रहते-रहते मैं ‘खसिया’ हो गया हूँ।”

“घरवाले जानते हैं क्या कि बात-बातमें तुम्हारा इतना परिवर्तन होना सम्भव है ?”

“खूब जानते हैं, नहीं तो फिर घरवाले कैसे ! किन्तु जाननेका मतलब बात-बातमें नहीं और खसिया होना भी नहीं। जैसा परिवर्तन आज मेरा हुआ है, यह क्या जाति-परिवर्तन है, यह है युग-परिवर्तन ! बीचमें एक कल्पान्त पड़ा हुआ है। प्रजापति जाग उठे हैं मेरे अन्दर, एक नई सृष्टिमें। मौसीजी, अनुमति दो, लावण्यको साथ लेकर आज एक बार घूम आऊँ मैं। जानेके पहले शिलांग-पहाड़को हम युगल-नमस्कार कर जाना चाहते हैं।”

योगमायाने अनुमति दे दी। कुछ दूर जाते-जाते दोनोंके हाथ मिल गये। दोनों इतने पास-पास चलने लगे कि देहसे देह छूने लगी। निर्जन सड़कके किनारे नीचेकी ओर घना जंगल है। उस जंगलमें एक जगह जरा-कुछ खुला-हुआ है, आकाशको मानो वहाँ पहाड़की नजरबन्दीसे जरा छुट्टी मिली है, और उसकी अञ्जलि भरी-हुई है सूर्यास्तकी शेष आभासे। वहींपर पश्चिमकी

ओर मुँह करके दोनों खड़े हो गये । अमितने लावण्यको अपनी छातीकी ओर खींचते-हुए उसका मुँह ऊपरको उठाया । लावण्यकी आँखें आधी भिच गईं और उनके किनारोंसे आँसू ढलकने लगे । आकाशमें सुनहले रंगपर मानो चुन्नी और पन्नोंकी विगलित किरणोंकी आभा पड़-पड़कर विलीन हो रही हो । बीच-बीचमें पतले बादलोंकी सँधोंमें है सुगभीर निर्मल नील, उसके भीतरसे जहाँ देह नहीं, केवल आनन्द ही आनन्द है, मानो उस अमर्त्य-जगत्की अव्यक्त ध्वनि आ रही हो । धीरे-धीरे अँधेरा हो आया, और उस खुले आकाशने रातके फूलकी तरह, अपनी नाना रंगोंकी पँखड़ियोंको बन्द कर लिया ।

अमितकी छातीके पाससे लावण्यने मृदु स्वरमें कहा, “चलो अब ।”

कैसा-तो लगा उसे कि यहीं शेष करना अच्छा है ।

अमित इस बातको समझ गया, कुछ बोला नहीं । लावण्यका मुँह एक बार छातीसे दबाकर वह धीरे-धीरे घरकी ओर चलने लगा ।

चलते-चलते बोला, “कल सवेरे ही मुझे शिलांग छोड़ना पड़ेगा, उसके पहले मैं तुमसे मिलने नहीं आऊँगा ।”

“क्यों नहीं आओगे ?”

“आज ठीक जगहपर आकर हमलोगोंका ‘शिलांग-अध्याय’ ठहरा है । इति प्रथमः सर्गः, हमलोगोंका सखी-सखा स्वर्ग ।”

लावण्य कुछ न बोली, अमितका हाथ पकड़े चलने लगी । हृदयके भीतर आनन्द है, और उसके साथ-साथ एक क्रन्दन स्तब्ध-हुआ बैठा है । उसे ऐसा लगा कि जीवनमें अचिन्तनीय अब कभी भी इतनी निविड़तासे इतने पास नहीं मिलेगा । आज परम-क्षणमें शुभदृष्टि हुई, इसके बाद अब क्या सुहागरात है ? रह गया केवल मिलन और विदाका एकत्र मिश्रित एक अन्तिम नमस्कार । बड़ा जी चाहने लगा कि अमितको वह अभी अन्तिम नमस्कार करके कहे कि ‘तुमने मुझे धन्य किया ।’ पर ऐसा न हो सका ।

घरके पास पहुँचते ही अमितने कहा, “वन्ध्या, आज तुम अपनी अन्तिम बात एक कवितामें कहो तो उसे मनमें रखके ले जाना मेरे लिए आसान होगा । तुम्हें खुद जो याद हो ऐसी कोई चीज सुनाओ ।”

लावण्यने जरा-सा सोचा ; और फिर कहने लगी :—

“नहीं दे सकी मैं तुमको सुख,

छोड़ चली मुक्तिका नैवेद्य-पात्र

रजनीके शुभ्र अवसानमें ।

रहा नहीं बाकी कुछ,

न प्रार्थना, न दैन्यराशि,

न अभिनय मान-भञ्जनका,

न गर्व-हास्य, न दीन-क्रन्दन पल-पलका,

न दृष्टि पीछे देखनेकी,

न ध्यान समस्या-समाधानमें ।

है केवल मुक्तिकी डाली रिक्त,

भर दूंगी, दे दूंगी आज उसे

निज मृत्युके महान अवदानमें ।”

“वन्धा, बहुत बुरा किया तुमने । आजके दिन अपने मुँहसे तुम्हें ऐसी बात नहीं कहनी थी, कदापि नहीं । क्यों तुम्हें आज इसकी याद आई ? अपनी यह कविता तुम इसी वक्त वापस ले लो ।”

“डर किस बातका, मीता ? यह आगमें जला-तपा प्रेम है, यह स्वयं आनन्दका दावा नहीं करता, यह मुक्त होनेके कारण ही मुक्ति देता है, इसके पीछे क्लान्ति नहीं आती, म्लानता नहीं आती । इससे ज्यादा और-कुछ क्या देनेका हो सकता है ?”

“किन्तु, मैं जानना चाहता हूँ कि यह कविता तुम्हें मिली कहाँसे ?”

“रवीन्द्रनाथकी है ।”

“उनकी किसी पुस्तकमें तो यह देखी नहीं ।”

“किसी पुस्तकमें तो नहीं निकली यह ।”

“तो फिर कहाँसे मिली ?”

“एक लड़का था, जो मेरे पिताको गुरु समझके भक्ति करता था । पिताने उसे दी थी ज्ञानकी खुराक, और इस दिशामें उसका हृदय भी था तापस ।

समय मिलते ही वह जाया करता था रवीन्द्रनाथके पास। कभी-कभी उनकी कापीमेंसे मुष्टि-भिक्षा ले आया करता था —”

“और लाकर तुम्हारे चरणोंमें उँढ़ेल दिया करता था।”

“इतना साहस उसमें नहीं था। कहीं-न-कहीं रख देता था, इस आशासे कि किसी कदर मेरी निगाह पड़ जाय और मैं उठा लूँ।”

“उसपर दया की थी?”

“करनेका मौका ही नहीं आया। मन-हो-मन प्रार्थना करती हूँ, ईश्वर उसपर दया करे।”

“जो कविता तुमने अभी सुनाई, मैं खूब समझ रहा हूँ कि यह उसी अभागकी मनकी बात है।”

“हाँ, उसकी बात तो है ही।”

“तो तुम्हें आज ही क्यों उसकी बात याद आई?”

“कैसे कहूँ? उस कविताके साथ और-एक कविताका टुकड़ा था, वह भी आज क्यों मुझे याद आ रही है, ठीक कह नहीं सकती। —

सुन्दर, तुम आँखों भर लाये हो आँसू-जल;

लाये हो प्राणों धर दुस्सह दुःख होमानल।

उससे जो हो उठता उज्ज्वल दुःख,

द्वट-फूट जाता मुग्ध —

प्राणोंका आवेश-बन्ध,

उस तापसे झवसित और

विकशित हो उठता है

विरह-विच्छेदका शतदल।”

अमितने लावण्यका हाथ मसककर कहा, “वन्या, वह लड़का आज हमारे बीच क्यों आ पड़ा? ईर्ष्या करनेसे मैं घृणा करता हूँ, यह मेरी ईर्ष्या नहीं है, पर कैसा-तो एक तरहका भय आ रहा है मनमें। बताओ, उसकी दी-हुई कविताएँ आज ही क्यों तुम्हें इस तरह याद आ रही हैं?”

“एक दिन जब कि वह हमारे घरसे विदा लेकर चला गया, उसके बाद,

जहाँ बैठकर वह लिखा करता था उस डेस्कमें ये दोनों कविताएँ मिली थीं। इसके साथ रवीन्द्रनाथकी और भी बहुत-सी अप्रकाशित कविताएँ थीं,— पूरी भरी-हुई कापी थी एक। आज तुमसे मैं विदा ले रही हूँ, शायद इसीलिए विदाकी कविता याद आ रही है।”

“वह ‘विदा’ और यह विदा क्या एक ही है?”

“कैसे कहूँ? किन्तु इस बहसकी तो कोई जरूरत नहीं। जो कविता मुझे अच्छी लगी है वही तुम्हें सुनाई है, हो सकता है कि इसके सिवा और कोई कारण इसमें न हो।”

“वन्या, रवीन्द्रनाथकी रचनाओंको जब तक लोग बिलकुल भूल नहीं जाते तब तक उनकी अच्छी रचनाएँ वास्तव-रूपमें प्रस्फुटित न हो सकेंगी। इसीलिए, मैं उनकी कविता कभी काममें नहीं लेता। किसी दलके लोगोंको ‘अच्छा लगना’ उस कुहरेकी तरह है जो आकाशपर अपने भीगे हाथ लगा-लगाकर उसके प्रकाशको मैला कर डालता है।”

“देखो, मीता, स्त्रियाँ अपनी अच्छी-लगनेवाली आदरकी वस्तुको अपने अन्तःपुरमें सिर्फ अपनी ही बनाकर छिपा रखती हैं, मीड़के आदमियोंकी कोई खबर ही नहीं रखतीं। वे जितना दाम दे सकती हैं सब दे डालती हैं, अन्य पाँच जनोंसे मिलाकर बाजार-भाव जाँचनेका उनका मन ही नहीं होता।”

“तो मेरे लिए भी आशा है, वन्या! मैं अपने बाजार-भावकी छोटी-सी एक छाप छिपाकर तुम्हारे अपने भावका बड़ासा एक मार्का लेकर क़ाती फुलाये घूमता फिरूँगा।”

“घर आ गया, मीता! अब तुम्हारे मुँहसे तुम्हारे पथान्तकी भी कविता सुन लूँ।”

“नाराज न होना, वन्या, मैं रवीन्द्रनाथकी कविता नहीं सुना सकता।”

“नाराज क्यों होने लगी!”

“मैंने एक कविका आविष्कार किया है, उसकी स्टाइलमें—”

“उसकी बात तो तुमसे मैं अकसर ही सुना करती हूँ। कलकत्तेको लिख दिया है मैंने, उसकी एक पुस्तक भेजनेके लिए।”

“तुमने गजब किया ! उसकी पुस्तक ! उस आदमीमें और चाहे जितने भी दोष हों, किन्तु अपनी पुस्तक वह कभी नहीं छपाता । उसका तरिचय तुम्हें मुझसे ही प्राप्त करना होगा धीरे-धीरे । नहीं तो शायद - ”

“डरो मत, मीता, तुमने उसे जिस रूपमें समझा है, मैं भी उसे उसी रूपमें समझ लूँगी, इतना मुझे भरोसा है । जीत मेरी ही रहेगी ।”

“क्यों ?”

“मेरे अच्छे-लगनेमें मैं जो पाती हूँ वह तो मेरा है ही, और, तुम्हारे अच्छे-लगनेमें तुम जो पाते हो वह भी मेरा होगा । मेरी लेनेकी अञ्जलि होगी हम-दोनोंके मनको मिलाकर । कलकत्तेमें तुम्हारे छोटेसे कमरेकी किताबोंकी अलमारीके एक खानेमें ही दोनों कवियोंकी कविताएँ अँटा सकूँगी मैं । - हाँ, अब तुम अपनी कविता सुनाओ ।”

“अब सुनानेको जी नहीं चाहता । बीचमें बहुत ज्यादा बहस हो जानेसे हवा खराब हो गई है, वन्या !”

“कुच्छ भी खराब नहीं हुई । हवा ठीक है ।”

“अमितने लावण्यके लटकते-हुए बालोंको उसके मुँहके सामनेसे माथेके ऊपर हटाते-हुए अत्यन्त वेदनाके स्वरमें कहना शुरू किया :—

“सुन्दरी, तुम हो शुक-तारा

सुदूर शैल - शिखरान्तमें,

शर्वरी जब होगी शेष

उतर आना दिक्भ्रान्तमें ।

समझीं, वन्या, चाँद बुला रहा है शुक-ताराको । वह अपनी रात-बितानेकी सज्जिनीको चाहता है । अपनी रातसे उसे अरुचि हो गई है । -

धरती जहाँ मिलती है अम्बरके गलेसे

वहाँका हूँ अर्ध-जाग्रत चन्द्र मैं,

कारी अँधियारीकी छातीमें छिपी-हुई

अर्ध-आलोक-रेखाका रन्ध्र मैं ।

उसकी इस अध-जगी थोड़ी-सी चाँदनीने अँधेरेको जरा-सा खरोंच-भर दिया

है। इसीका उसे खेद है। स्वल्पताके इस जालने जो उसे जकड़ लिया है उसे तोड़ डालनेके लिए मानो वह सारी रात सोते-सोते घुमड़-घुमड़कर आहें भर रहा हो। कैसी कल्पना है ! ग्रैण्ड !

मेरे लिए आसन आज

गहरी नींद सोये-हुए

महाशून्यने बिछाया है।

तन्द्राको कुछ करके कम

हृदतन्त्रीको सपनेमें

बजा रही मम काया है।

पर, ऐसा हलका होकर जीनेका बोझ जो बहुत ज्यादा है। जिस नदीका पानी सूख गया है उसके मन्थर स्रोतकी थकानमें जंजाल जमता रहता है, जो स्वल्प है वह अपनेको ढोनेमें क्लिष्ट हो रहा है। इसीसे वह कहता है—

सफर मेरा हुआ पूरा

धीमी चाल जाता पार।

थके मेरे सारे अङ्ग

रुकता कण्ठ बारम्बार।

पर, इस थकानमें ही क्या उसका अन्त है ? अपनी ढीले तारोंकी वीणाको नये तरीकेसे फिरसे बाँधनेकी आशा उसे होने लगी है। दिगन्तके उस पार मानो किसीकी पग-ध्वनि उसे सुनाई देती है—

सुन्दरी शुक-तारका मम,

बीते नहीं रात, उसके

पहले ही आना तुम।

सपनेकी वही बात

अधूरी रह गई जो

जगाकर सुनाना तुम।

उद्धारकी आशा है, कानोंमें सुनाई जो दे रहा है जाग्रत विद्वका विपुल कलरव, उस महापथकी दूती अपना हाथमें प्रदीप लिये आना ही चाहती है—

भूला पड़ा अपनेको
 निशीथके अँधेरेमें,
 उठा लेना पकड़ हाथ,
 रखना अरुण प्रभातमें,
 करना धन्य प्रकाशमें ।
 लीन हुई सुप्ति जहाँ,
 विश्व - महामन्द्र जहाँ,
 सौँपी वहीं है वीणा
 अर्ध - जाग्रत चन्द्र में ।

वह अभागा चाँद तो मैं ही हूँ, वन्या ! कल सवेरे चला जाऊँगा । पर, अपने चले-जानेको तो मैं सूना नहीं रखना चाहता । उसके ऊपर आविर्भूत होगी सुन्दरी शुकतारका, जागरणका गीत लेकर आयेगी वह । अन्धकारमय जीवनके स्वप्नमें अब तक जो अस्पष्ट था, सुन्दरी शुकतारका उसे प्रभातमें सम्पूर्ण कर देगी । इसमें एक आशाका जोर है, भावी प्रभातका एक उज्ज्वल गौरव है, तुम्हारे कवि रवीन्द्रनाथकी कविताकी तरह मुरझाया-हुआ इताशाका विलाप नहीं इसमें ।”

“नाराज क्यों होते हो, मीता ? मेरे कवि रवीन्द्रनाथ जितना कर सकते हैं उससे ज्यादा वे नहीं कर सकते, बार-बार यह बात कहनेसे लाभ क्या बताओ ?”

“तुमलोग सब मिलके उसे बहुत ज्यादा - ”

“ऐसा न कहो, मीता ! मेरा ‘अच्छा-लगना’ मेरा ही है, उसमें यदि और किसीके साथ मेरा मेल हो या तुम्हारे साथ मेल न हो, तो इसमें क्या मेरा दोष है ? न-हो-तो, वचन देती हूँ मैं, तुम्हारे उस पचहत्तर रुपयेवाले मकानमें, किसी दिन अगर मेरे लिए जगह हो तो, तुम अपने कविकी रचना ही सुनाना मुझे, मैं अपने कविकी रचना तुम्हें नहीं सुनाऊँगी ।”

“यह बात तो बेजा हुई । परस्पर एक दूसरेका उपद्रव कँधेसे कँधा मिलाकर ढोयेंगे हम, इसीलिए तो विवाह है ।”

“रुचिका उपद्रव तुमसे किसी भी तरह सहा न जायगा। रुचिके भोजमें तुमलोग निमन्त्रितोंके सिवा और-किसीको भीतर घुसने नहीं देते, और मैं अतिथिको भी आदरके साथ बिठाती हूँ।”

“मैंने अच्छा नहीं किया तर्क उठाकर। हमारा आजका यह शेष-सन्ध्याका सुर बिगड़ गया।”

“जरा भी नहीं। जो कुछ कहनेका है सो सब स्पष्ट कहनेके बाद भी जो सुर टिका रहता है वही हमलोगोंका सुर है। उसमें क्षमाका अन्त नहीं।”

“आज भुम्हे अपने मुँहका विस्वाद मिटाना ही होगा। पर, बंगला काव्यसे नहीं होगा। अंग्रेजी काव्यसे मेरी विचार-बुद्धि बहुत-कुछ शान्त रहती है। योरोपसे लौटनेके बाद शुरू-शुरूमें मैंने भी कुछ दिन प्रोफेसरी की थी।”

लावण्यने हँसके कहा, “हमलोगोंकी विचार-बुद्धि अंगरेजके घरके बुल-डॉगकी तरह है, धोतीकी लाँग लटकती देखता है तो वह भौंकने लगता है। धोती-विभागमें कौनसा भद्र है, इसका उसे पता ही नहीं। बल्कि खानसामेका तगमा देखता है तो पूँछ हिलाने लगता है।”

“यह तो मानना ही पड़ेगा। पक्षपात स्वाभाविक चोज नहीं, अधिकांश क्षेत्रोंमें वह फरमाइशसे बनाया जाता है। अंगरेजी-साहित्यका पक्षपात बचपनसे ही कनेठी खा-खाकर अभ्यस्त हो गया है। उस अभ्यासके जोरसे ही जैसे एक पक्षको बुरा बतानेका साहस नहीं होता वैसे ही दूसरे पक्षको अच्छा कहनेके साहसका अभाव बना रहता है। खैर जाने दो, निवारण चक्रवर्ती भी नहीं आज, आज तो बिल्कुल खालिस अंगरेजी कविता चलने दो, बिना अनुवादके।”

“नहीं नहीं, मीता, आज तुम अपनी अंगरेजी रहने दो। उसे घर जाकर टेबिलपर बैठे पढ़ते रहना। आज हमलोगोंकी इस सन्ध्याकी आखिरी कविता निवारण चक्रवर्तीकी ही होनी चाहिए, और-किसीकी नहीं।”

अमित उत्फुल्ल होकर बोल उठा, “जय निवारण चक्रवर्तीकी जय ! इतने दिन बाद वह अमर हुआ। वन्या, उसे मैं तुम्हारा सभा-कवि बना दूंगा। तुम्हारे सिवा और-किसीके द्वारका प्रसाद वह न लेगा।”

“उससे क्या वह हमेशा सन्तुष्ट रहेगा ?”

“नहीं रहेगा तो उसे कान पकड़के विदा कर दिया जायगा ।”

“अच्छा, कान पकड़नेकी बात पीछे तय करेंगे, पहले कानमें पड़ने दो ।”

अमित कहने लगा :—

“कितना धर धीरज तुम
ठहरीं दिन-रात पास ।
अपने पद-चिह्नोंको
छोड़ गई बार-बार
मम भाग्य-पथकी धूलमें,
मानो पराग फूलमें ।
आज जब
जाना है दूर तब
कर जाऊँगा तुम्हें दान
तुम्हारा ही विजय-गान ।
मेरे इस जीवनमें
बार-बार व्यर्थ हुए
बहुतेरे आयोजन ;
होमानल नहीं जला,
शून्यमें विलीन हुई
आशाएँ धूआँ बन,
सूना कर मेरा मन ।
बार-बार आँका है
क्षणमङ्गुर शिखाने
क्षीण टीका निश्चेतन
निशीथिनीके भालमें ।
निश्चिह्न हो गया सब
चिह्न-हीन कालमें ।

तुम्हारा अब आगमन
 होगा, होम - हुताशन
 गौरवसे जलेगा ।
 यज्ञ मेरा पलेगा ।
 आहूति दिन - शेषमें
 अपनी दी तुम्हारे हेत ।
 लौ अब प्रणाम मेरा
 जीवनका परिणाम शेष ।
 देना स्पर्श स्नेहका
 मेरी इस प्रणतिको ।
 ऐश्वर्यमें तुम्हारे हैं
 सिंहासन बिछा जहाँ,
 करना आह्वान मेरा,
 मिल जाय अवश्य वहाँ
 स्थान मेरी प्रणतिको ।”

१३—आशङ्का

आज, सवेरेसे ही काममें मन लगाना लावण्यके लिए कठिन हो गया है । वह घूमने भी नहीं गई । अमितने कहा था, शिलांगसे जानेके पहले आज सवेरे वह उनलोगोंसे मिलना नहीं चाहता । उस प्रतिज्ञाकी रक्षाका भार दोनोंपर है । क्योंकि, जिस रास्तेसे वह घूमने जाती है उसी रास्तेसे अमितको जाना है । इससे मनमें उसके लोभ भी काफी था । उसे कसके दबाना पड़ा । योगमाया तड़के ही स्नान करके अपनी पूजा-आह्निकके लिए कुछ फूल चुनती हैं । उनके निकलनेके पहले ही लावण्य उस जगहसे चली आई युकैलिप्टस-पेड़के नोचे । हाथमें दो-एक किताब थीं, शायद अपनेको और दूसरोंको भुलावा देनेके लिए । एक किताबके पन्ने खुले थे ; किन्तु दिन चढ़ रहा है, पन्ने उलटे नहीं जा रहे । अपने मनमें वह बार-बार यही कह रही

है कि 'जीवनके महोत्सवका दिन कल समाप्त हो गया।' आज सवेरे मेघ और धूपमेंसे भग्नताका दूत बीच-बीचमें आकाशमें बुहारी-सी दे रहा है। लावण्यके मनमें दृढ़ विश्वास है कि अमित चिर-पलायित है,—एक बार वह खिसक गया तो फिर उसका पता नहीं लग सकता। राह चलते-चलते न-जाने कब वह कहानी शुरू करता है, उसके बाद फिर रात आती है, और दूसरे दिन सवेरे देखा जाता है कि कहानीका सूत्र टूट गया है, और पथिक चला गया है। इसीसे, लावण्य सोच रही थी कि उसकी कहानी अबसे चिर दिनके लिए बाकी रह गई। आज उस असमाप्तिकी म्लानता है सवेरेके उजालेमें, और अकाल-अवसानका अवसाद है आर्द्र हवामें।

इतनेमें, करीब नौ बजे होंगे, धमाधम आवाज करता-हुआ अमित आ पहुँचा और लगा पुकारने, "मौसीजी, मौसीजी!" योगमाया सन्ध्या-पूजासे निवृत्त होकर भण्डारके काममें लगी-हुई थीं। आज उनका भी मन पीड़ित था। अमितने अपनी बातोंसे, हँसीसे और चाञ्चल्यसे इतने दिनों तक उनके स्नेहासक्त मनको, उनके घरको, भर रखा था। 'अमित चला गया'—इसकी व्यथाके बोझसे उनका आजका सवेरा मानो वृष्टि-बिन्दुके भारसे तुरत-भड़े फूलकी तरह मुरझा गया है। अपने विच्छेद-पीड़ित घर-गृहस्थीके काममें आज उन्होंने लावण्यको नहीं बुलाया। समझ गईं वे कि आज उसे अकेली रहनेकी जरूरत है, लोगोंकी दृष्टिके ओझल।

लावण्य झटपट उठके खड़ी हो गई। गोदमेंसे किताब गिर गई नीचे, इसका कुछ होश हो नहीं उसे। इधर योगमाया फुरतीसे भण्डार-घरसे निकल आई, और बोली, "क्या है, बेटा अमित, भूकम्प हो रहा है क्या?"

"भूकम्प तो है ही। चीज-वस्तु सब रवाना कर दी हैं। गाड़ी तैयार है। डाकखाना गया था, यह देखने कि कोई चिट्ठी-पत्री तो नहीं आई। वहाँ एक टेलिग्राम मिला।"

अमितके चेहरेका भाव देखकर योगमाया उद्विग्न हो उठी, पूछा, "खबर तो सब अच्छी है न?"

इतनेमें लावण्य भी आ पहुँची। अमितने व्याकुल चेहरेसे कहा, "आज

ही शामको आ रहे हैं सब,—मेरी बहन सिसी, उसकी सखी केटी मित्र और उसके भाई नरेन ।”

“सो इसमें चिन्ताकी क्या बात है, बेटा ! सुना है, घुड़दौड़के मैदानके पास एक मकान खाली है । अगर कहीं भी कोई इन्तजाम न हुआ तो हमारे यहाँ क्या किसी कदर जगह न होगी ?”

“इसके लिए चिन्ता नहीं, मौसी ! उनलोगोंने खुद ही टेलिग्राम करके होटलमें जगह ठीक कर ली है ।”

“और चाहे जो हो, बेटा, तुम्हारी बहन वगैरह आकर देखेंगी कि तुम उस मनहूस मोंपड़ेमें हो, यह हरगिज न होगा । वे अपने आदमीकी सनकके लिए हम ही लोगोंको जिम्मेदार ठहरायेंगी ।”

“नहीं, मौसी ! मेरा पैराडाइज लॉस्ट है । उस नग्न असवाबके स्वर्गसे मेरी विदा हो चुकी है । उस रस्सीकी खाटके घोंसलेसे मेरे सारे सुख-स्वप्न उड़ भागेंगे । मुझे भी जगह लेनी पड़ेगी उस अति-परिष्कृत होटलके एक अति-सभ्य कमरेमें ।”

बात ऐसी-कुछ खास नहीं थी, फिर भी लावण्यका चेहरा फक पड़ गया । इतने दिनोंसे यह बात कभी उसके ध्यानमें ही न आई थी कि अमितका जो समाज है वह उनलोगोंके समाजसे हजारों योजन दूर है । एक ही क्षणमें इसे वह समझ गई । अमित जो आज कलकत्ता जा रहा था उसमें विच्छेदकी कठोर मूर्ति नहीं थी । किन्तु, यह जो आज उसे होटल जानेके लिए मजबूर होना पड़ रहा है, इसीसे लावण्य समझ गई कि जिस घरको इतने दिनोंसे वे दोनों नाना अदृश्य उपकरणोंसे गढ़ते आ रहे थे वह घर शायद अब किसी भी दिन दिखाई न देगा ।

लावण्यकी ओर एक नजर देखकर अमितने योगमायासे कहा, “मैं होटलमें जाऊँ चाहे जहन्नुममें, पर, असल घर मेरा यहीं रहा ।”

अमित समझ गया है कि शहरसे एक अशुभ-दृष्टि आ रही है । मन ही मन उसने तरह-तरहके प्लैन बना लिये हैं, ताकि सिसीका दल यहाँ आ न सके । किन्तु, इधर कुछ दिनोंसे उसकी चिट्ठी-पत्री आ रही है योगमायाके घरके

ठिकानेसे,—तब उसने यह नहीं सोचा था कि इससे कभी उसपर विपत्ति आ सकती है। अमितके मनके भाव दबे नहीं रहना चाहते, यहाँ तक कि कुछ आधिक्यके साथ ही प्रकट होते हैं। बहनके आगमनके सम्बन्धमें उसका इतना ज्यादा उद्वेग योगमायाको कुछ असङ्गत-सा लगा। लावण्य भी समझ गई कि अमित उसके साथ ऐसे सम्बन्धके लिए अपनी बहन आदिके सामने लज्जा अनुभव कर रहा है। गरज यह कि मामला लावण्यके लिए विस्वाद और असम्मानजनक हो उठा।

अमितने लावण्यसे पूछा, “समय है क्या तुम्हारे पास, घूमने चलोगी?”

लावण्यने जरा-कुछ कठोरताके साथ ही जवाब दिया, “नहीं, समय नहीं है।”

योगमाया कुछ व्यस्त होकर बोल उठी, “जाओ-न, बेटी, घूम आओ।”

लावण्यने कहा, “मा, कुछ दिनोंसे सुरमाको पढ़ानेमें मेरी तरफसे बड़ी लापरवाही हो रही है। बड़ा अपराध हो गया है मुझसे। कल रात ही को तय किया था मैंने कि आजसे अब किसी भी तरह ढिलाई न करूँगी।”

इतना कहकर वह ओठ दबाकर चेहरा कठोर करके बैठी रही।

लावण्यके इस जिद्दी मिजाजसे योगमाया परिचित थीं। दबाव डालने या अनुरोध करनेकी हिम्मत नहीं हुई उन्हें।

अमितने नीरस कण्ठसे कहा, “मैं भी चल दिया कर्तव्य करने, उनलोगोंके लिए सब ठीक-ठाक करके रखना है।”

इतना कहकर, चले जानेके पहले, वह बरामदेमें एक बार स्तब्ध होकर खड़ा हो गया। बोला, “वन्या, वह देखो! पेड़की ओटमेंसे मेरी झोंपड़ीका छप्पर जरा-जरा दीख रहा है। एक बात तुमलोगोंसे कही नहीं गई है, वह मकान मैंने खरीद लिया है। मकानका मालिक तो पहले मेरी बात सुनके दंग रह गया। उसने जरूर सोचा होगा कि वहाँ मुझे सोनेकी गुप्त खानका पता लग गया है। कीमत उसने खूब कसके वसूल की है। वहाँ सोनेकी खानका पता तो लग ही गया था, और उसकी खबर एकमात्र मुझे ही है। मेरी उस जीर्ण कुटीरका ऐश्वर्य और-सबोंकी निगाहसे छिपा रहेगा।”

लावण्यके चेहरेपर एक गभीर विषादकी छाया आ पड़ी। उसने कहा, “और-सबोंकी बात तुम इतनी बढ़ा-चढ़ाकर क्यों सोचते हो? और-सब जान ही जायेंगे तो क्या होगा। ठीक-ठीक जान जाना तो ठीक ही है, फिर असम्मान करनेका किसीको साहस ही न होगा।”

इस बातका कुछ उत्तर न देकर अमितने कहा, “वन्धा, मैंने तय कर लिया है कि ब्याहके बाद हमलोग इसी मॉपड़ेमें आकर रहेंगे कुछ दिन। मेरा वह गङ्गा - किनारेका बगीचा, वह घाट, वह वटवृक्ष, सब-कुछ समा गया है इस मॉपड़ेमें। तुम्हारा दिया-हुआ ‘मीता’-नाम इसीको फबता है।”

“उस घरसे आज तुम निकल आये हो, मीता! फिर किसी दिन उसमें घुसना चाहोगे तो देखोगे, उसमें तुम अमा नहीं रहे हो। संसारमें ‘आजके दिनके घर’में ‘कलके दिन’को जगह नहीं रहती। उस दिन तुमने कहा था, ‘जीवनमें मनुष्यकी पहली साधना गरीबीकी है, दूसरी साधना है ऐश्वर्यकी।’ उसके बाद अन्तिम साधनाकी बात तुमने नहीं बताई, वह है त्यागकी साधना।”

“वन्धा, यह तुम्हारे रवि ठाकुरकी बात है। उसने लिखा है, ‘शाहजहाँ आज अपने ताजमहलसे भी आगे बढ़ गया है।’ एक छोटी-सी बात तुम्हारे कविके दिमागमें नहीं आई कि हमलोग जो-कुछ बनाया करते हैं वह इसी लिए कि हम उस बनी-हुई चीजसे आगे बढ़ जायें। विश्व-सृष्टिमें इसीको कहते हैं ‘एवोल्यूशन’, क्रम-विकास। एक अद्भुत भूत सरपर सवार रहता है और कहता है, ‘सृष्टि करो।’ सृष्टि करते ही भूत उतर जाता है, तब फिर उस सृष्टिकी जरूरत नहीं रहती। किन्तु इसके मानी यह नहीं कि उस सृष्टिको छोड़ जाना ही चरम बात हो। दुनियामें शाहजहाँ-मुमताजकी अक्षय धारा बराबर बहती ही आ रही है, वे क्या अकेले ही हैं? इसीलिए तो ताजमहल किसी भी दिन शून्य नहीं हुआ। हो नहीं सकता। निवारण चक्रवर्तिन सुहागरातपर एक कविता लिखी है। वह तुम्हारे कविवरकी ‘ताजमहल’-कविताका संक्षिप्त उत्तर है पोस्टकार्डपर लिखा-हुआ—

तुम्हें छोड़ जाना है

सवेरेकी होनमें सुनके रथचक्र-शब्द

रात हो उठेगी जब
 उदासी अनमनी-सी ।
 हाय री सुहाग-रात,
 है तू बाहर विराट
 बिछोड़की डकैत-सी ।
 टूटती या फूटती है जितनी ही
 फिर भी वह
 करती बरबाद तोड़
 बरमाला उतनी ही ।
 तू है क्षयहीन सदा
 तेरा यह उत्सव-दिन
 अक्षय है प्रतिक्षण ;
 उत्सव तुम्हारा कभी
 बिघटे न विच्छिन्न होता,
 होता नहीं नीरव भी ।
 कौन कहता है, तुम्हें
 छोड़ चला गया है युगल
 सूना कर शय्या-तल ?
 नहीं गया, नहीं गया,
 नये-नये यात्रियोंमें घूम-घूम आते वे ही
 तुम्हारे आह्वानपर
 उदार तुम्हारे द्वारपर ।
 अरी ओ सुहाग-रात,

विश्वमें प्रेम है मृत्यु-हीन, तुम भी हो नित अमर ।
 तुम्हारा रवि ठाकुर सिर्फ चले जानेकी बात ही कहता है, रह जानेका गीत गाना
 नहीं जानता वह । वन्या, कवि क्या कहता है कि हम दोनों भी उस दिन
 उस सुहाग-रातका दरवाजा खटखटायेंगे, और दरवाजा नहीं खुलेगा ?”

“मेरी विनती रखो, मीता ! आज सवेरे कविकी लड़ाई न छेड़ो तुम । तुम क्या समझते हो, पहले ही दिनसे मैं नहीं समझी हूँ कि तुम्हीं निवारण चक्रवर्ती हो ? किन्तु तुम अपनी इन कविताओंमें अभीसे हमारे प्रेमकी समाधि बनाना शुरू मत करो, कम-से-कम उसके मरने तक प्रतीक्षा करो ।”

अमित आज बहुत-सी फालतू बातें कहकर अपने भीतरके किसी उद्वेगको दबाना चाहता है, लावण्य इस बातको समझ गई है ।

अमित भी समझ गया कि काव्यका द्वन्द्व कल शामको बेमेल नहीं हुआ, किन्तु आज सवेरेसे उसका सुर बिगड़ा जा रहा है । पर, यह बात लावण्यके लिए स्पष्ट हो रही है, यह उसे अच्छा नहीं लगा । वह जरा-कुछ नीरस भावसे बोला, “तो मैं जाऊँ, विश्व-जगतमें मेरे लिए भी काम है ; फिलहाल वह है होटल देखना । उधर शायद अभागे निवारण चक्रवर्तीकी छुट्टीकी मियाद भी खतम हुई जा रही है ।”

लावण्यने अमितका हाथ पकड़कर कहा, “देखो, मीता, अपने मनको तुम ऐसा बनाये रखना जिससे हमेशा मुझे क्षमा कर सको । अगर किसी दिन चले जानेका समय आये, तो, तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, नाराज होकर न चले जाना ।” इतना कहकर वह आँसू छिपानेके लिए जल्दीसे दूसरे कमरेमें चली गई ।

अमित कुछ देर तक स्तब्ध खड़ा रहा । फिर धीरे-धीरे अन्यमनस्क-सा होकर चला गया युकैलिप्टसके नीचे । देखा कि वहाँ कुछ अखरोटके छिलके बिखरे-हुए पड़े हैं । देखते ही उसके मनमें कैसी-तो एक तरहकी व्यथा-सी चुभने लगी । जीवनकी धारा चलते-चलते अपने जो चिह्न बिछा जाती है उनकी तुच्छता ही सबसे ज्यादा सकरुण होती है । उसके बाद देखा कि घासपर एक किताब पड़ी-हुई है रवीन्द्रनाथकी ‘बलाका’ । उसके नीचेके पन्ने भीग गये हैं । एक बार उसने सोचा कि उसे वह दे आये जाकर, पर, देने नहीं गया, जबमें रख ली । होटल जानेको उद्यत हुआ, किन्तु गया नहीं, बैठ गया पेड़के नीचे ।

रातके गीले बादलोंने आकाशको खूब कसके माँज दिया है । धूलसे धुली हवामें चारों तरफका चित्र अत्यन्त स्पष्ट दिखाई दे रहा है, पहाड़ और

पेड़-पौधोंके सीमान्त मानो घने नील आकाशमें खुदे-हुए हों, जगत् मानो पास आकर उसके मनके बिलकुल ऊपर आ लगा हो । धीरे-धीरे वेला चली जा रही है, उसके भीतर है भैरवीका सुर ।

लावण्यकी प्रतिज्ञा थी कि अबसे वह खूब डटके काम करने लग जायगी, फिर भी उसने जब दूरसे देखा कि अमित पेड़के नीचे बैठा है तो उससे रहा नहीं गया, भीतरसे उसका हृदय काँप उठा, आँखोंमें आँसू भर आये । पास आकर बोली, “मीता, क्या सोच रहे हो तुम ?”

“इनने दिनोंसे जो सोच रहा था उससे बिलकुल उलटा ।”

“बीच-बीचमें मनको बिलकुल उलटके देखे बिना तुम चंगे नहीं रहते । अच्छा तो, तुम्हारी उलटी चिन्ता कैसी है, सुनूँ तो सही ।”

“मैं तुम्हें अपने मनमें लिये-लिये बराबर घर ही बना रहा था ; कभी गङ्गाके किनारे तो कभी पहाड़के ऊपर । आज मनमें और-एक चित्र जाग रहा है, सवेरेके उजालेमें उदास करनेवाले एक ‘पथका चित्र’, जो वनकी छाया ही छायामें सामनेकी उन पहाड़ियोंके ऊपरसे चलता चला गया है । हाथमें एक लम्बा भाला है मेरे, और पीठपर है एक चमड़ेके स्ट्रैपसे बँधा-हुआ चौखूँटा थैला । तुम चलोगी साथ । तुम्हारा नाम सार्थक हो, वन्या, मुझे मालूम होता है तुम मुझे बन्द घरसे निकालकर प्रवाहके पथपर बहाये लिये जा रही हो । घरमें आदमी बहुत होते हैं, और पथ होगा केवल हम दो जनोंका ।”

“डायमण्डहारबरका बगीचा तो चला ही गया, उसके बाद वह पचहत्तर रुपये-वाला घर भी बेचारा जाता रहा । खैर जाने दो । पर, चलनेके पथमें विच्छेदकी व्यवस्था कैसी करोगे ? जब दिन छिपने लगेगा तब तुम घुसोगे एक पान्थशालामें, और मैं किसी-औरमें ?”

“इसकी जरूरत ही नहीं होगी, वन्या ! ‘चलना’ स्वयं ही सबको नया बनाये रखता है, कदम-कदमपर नया, पुराना होनेका समय ही नहीं मिलता । असलमें बैठा रहना ही दुड़ापा है ।”

“अकस्मात् ऐसा विचार तुम्हारे मनमें क्यों आया, मीता ?”

“तो सुनो, बताता हूँ । अचानक शोभनलालकी एक चिट्ठी मिली मुझे ।

उसका नाम सुना होगा शायद, 'रायचन्द-प्रेमचन्द स्कॉलर'-वाला है वह । कुछ दिन हुए, वह भारतीय इतिहासके प्राचीन पथोंका सन्धान करनेके लिए निकल पड़ा है । अतीतके लुप्त मार्गका उद्धार करना चाहता है बेचारा । और मेरी इच्छा है कि मैं भविष्यका मार्ग तैयार करूँ ।”

लावण्यकी छातीके भीतर सहसा एक जोरका धक्का लगा । अमितकी बातको बीच ही में रोककर उसने कहा, “शोभनलालके साथ एक ही साल मैंने एम०ए०की परीक्षा दी थी । उसकी आगेकी खबर सुननेको जी चाहता है ।”

“एक बार तो उसे सनक सवार हुई कि अफगानिस्तानके प्राचीन शहर कपिशके भीतरसे किसी दिन जो पुराना रास्ता गया था उसकी वह खोज करेगा । उसी रास्तेसे हूँन साँगने तीर्थयात्रा की थी ; और उससे भी पहले अलेक्जेंडरने जो रणयात्रा की थी वह भी उसी रास्तेसे । शोभनलालने खूब कसकर पश्तो पढ़ी और पठानी कायदे-कानूनोंका अभ्यास किया । सुन्दर चेहरेपर ढीले कपड़े पहन लेनेसे वह ठीक पठान-जैसा नहीं दिखाई देता, दिखाई देता है फ्रान्सीसी-जैसा । एक दिन उसने मुझे आकर पकड़ा, फ्रान्समें जो फ्रान्सीसी विद्वान् इस काममें लगे-हुए हैं उनके नाम परिचय-पत्र लिख देनेके लिए । फ्रान्समें रहते समय किसी-किसीके पास मैं पढ़ चुका हूँ । पत्र तो लिख दिया मैंने, पर, भारत-सरकारसे उसे छूट-पत्र नहीं मिला । उसके बादसे वह दुर्गम हिमालयपर बराबर मार्ग ढूँढ़ता फिर रहा है,—कभी काश्मीर जाता है तो कभी कुमायूँ । अबकी बार उसकी तबीयत चली है वह हिमालयके पूर्व-प्रान्तको भी ज्ञान डालेगा । बौद्ध-धर्म प्रचारका पथ उधरसे कहाँ गया है, उसे वह देखना चाहता है । उस ‘पथ-पागल’की बात याद आते ही मेरा मन उदास हो जाता है । पोथियोंके अन्दर सिर्फ बातोंका रास्ता ढूँढ़-ढूँढ़ कर हम आँखें खो बैठते हैं, और वह पागल निकला है ‘पथकी पोथी’ पढ़ने मानव-विधाताके अपने हाथकी लिखी-हुई ! मुझे कैसा लगता है जानती हो ?”

“क्या, बताओ ?”

“ऐसा लगता है मुझे कि प्रथम यौवनमें किसी दिन शोभनलालने किसी कङ्कण-पहने हाथका धक्का खाया है, इसीसे वह घरसे झिटक पड़ा है । उसकी

कहानी मुझे मालूम नहीं, पर हाँ, एक दिनकी बात है, मेरे साथ अकेला ही था वह,— बातों-ही-बातोंमें रातके बारह बज गये, जंगलेके बाहर सहसा चाँद दिखाई दिया एक फूल-खिले मौलसिरीके पेड़की ओटमेंसे । ठीक उसी समय किसीकी बात करनी चाही उसने, नाम नहीं बताया, और न कुछ ब्योरा ही बताया । जरा-कुछ आभास देते-देते ही गला भारी हो आया उसका, और चटसे उठकर चल दिया । मैं समझ गया कि उसके जीवनमें कहीं-न-कहीं एक अत्यन्त निष्ठुर बात चुभी-हुई है उसके । और शायद उस बातको ही वह राह चलते-चलते पाँवोंसे घिस-घिसके मिटा देना चाहता है ।”

लावण्यका ध्यान सहसा उद्भिद्भूतत्वकी ओर चला गया, और झुककर वह देखने लगी घासमें सफेद-पीले रंगके एक वनफूलकी तरफ । अत्यन्त मनोयोगके साथ उसे उसकी पंखड़ियाँ गिननेकी आवश्यकता मालूम हुई ।

अमित बोला, “समझीं, वन्या, मुझे तुमने आज रास्तेकी तरफ ढकेल दिया है ।”

“कैसे ?”

“मैंने एक घर बनाया था । आज सवेरे तुम्हारी बातोंसे मालूम हुआ कि तुम उसके भीतर पाँव धरनेमें सकुचाती हो । आज दो महीनेसे मैंने मन ही मन घर सजाया है और तुम्हें बुलाकर कहा है, ‘आओ प्रिये, घरमें आओ ।’ और तुमने आज प्रियाका साज-शृङ्गार उतार दिया ! बोलो, ‘यहाँ जगह न होगी, बन्धु, हमारा सप्तपदी-गमन चिरकाल चलता रहेगा’ ।”

वनफूलकी उद्भिद्-विद्या आगे नहीं बढ़ी । लावण्य सहसा उठ खड़ी हुई, और क्लिष्ट-स्वरमें बोली, “मीता, अब रहने दो, समय नहीं रहा ।”

१४ — धूमकेतु

इतने दिनों बाद अमितको पता चला कि लावण्यके साथ उसके सम्बन्धको शिलाँगके सभी वंगाली जान गये हैं । सरकारी आफिसके क्लर्कोंका मुख्य आलोच्य विषय होता है उनके जीविका-भाग्य-गगनमें कौनसा ग्रह राजा हुआ और कौनसा मन्त्रिवर । इतनेमें, उनकी नजरोंमें पड़ गया मानव-जीवनके

ज्योतिर्मण्डलमें एक युग्मताराका आवर्तन, एकदम 'फास्ट मैग्निच्युड' का प्रकाश । पर्यवेक्षकोंकी प्रकृतिके अनुसार इन दोनों चमकते-हुए ज्योतिष्कोंके आग्नेय-नाट्यकी नानाप्रकारकी व्याख्याएँ चल रही हैं ।

पहाड़पर हवा खाने आया था कुमार मुखर्जी, अटनी ; और वह भी इस व्याख्यामें आ पड़ा । संक्षेपमें कोई उसे कहता, 'कुमार मुख', और कोई कहता, 'मार मुख' । सिसी-लिसीकी मित्र-गोष्ठीका अन्तश्चर नहीं था वह, किन्तु उनकी ज्ञाति अर्थात् जान-पड़चानकी गोष्ठीमें जरूर था । अमितने उसका नाम रखा था 'धूमकेतु' । इसका एक कारण तो यह था कि वह इनके गुटके बाहरका है, और फिर भी बीच-बीचमें इनके कक्षमार्गमें पूँछ छुआ जाता है । सभीका अनुमान है कि जो ग्रह उसे खास तौरसे खींच रहा है उसका नाम है 'लिसी' । इस विषयको लेकर सभी-कोई हँसी-मजाक किया करते हैं, पर, स्वयं लिसी इससे क्रुद्ध और लज्जित है । और इसीलिए, लिसी अकसर उसकी जोरसे पूँछ मरोड़कर चली जाती है । फल-स्वरूप देखा यह जाना है कि धूमकेतुकी पूँछ या मूँछका कुछ भी नहीं बिगड़ता ।

अमितने शिलौंगके राइ-वाजारमें 'कुमार मुख'को दूरसे दो-एक बार देखा है, हालाँ कि उसे देख पाना जरा मुश्किल ही है । आज तक कभी वह विलायत नहीं गया, और यही वजह है कि उसके चाल-चलनमें विलायती अदब-कायदे अत्यन्त उत्कट-रूपसे प्रकट होते हैं । उसके मुँहमें हर वक्त एक मोटा चुरस्ट सुलगता रहता है ; और यही उसके 'धूमकेतुमुख'-नामका प्रधान कारण है । अमित उससे दूरसे ही बचते रहनेकी कोशिश करता आया है, और साथ ही अपनेको भुलावा भी देता आया है कि धूमकेतु इस बातको शायद नहीं जानता । किन्तु 'देखकर भी न देखना' एक बड़ी विद्या है, चोरी-विद्याकी तरह उसकी सार्वकता है पकड़े न जानेमें । उसमें प्रत्यक्ष दृश्यको सम्पूर्ण पार करके देखनेकी पारदर्शिता होनी चाहिए ।

कुमार मुखने शिलौंगके बंगाली-समाजसे ऐसी बहुतसी बातें संग्रह की हैं जिनका मोटे अक्षरोंमें शीर्षक दिया जा सकता है 'अमित रायका अमिताचार' । मुँहसे जिनलोगोंने सबसे अधिक निन्दा की है, मनसे वे ही अब सबसे अधिक

रस लिया करते हैं। यकृतकी विकृति सुधारनेके लिए कुमारका कुछ दिन यहाँ रहना तय था, किन्तु, जनश्रुति-विस्तारके उग्र उत्साहने उसे पाँच ही दिनमें कलकत्ता वापस भेज दिया। वहाँ जाकर सिसी-लिसीकी सोसाइटीमें उसने अपनी चुरहट-धूमावृत अत्युक्तियोंके उद्गारसे अमितके सम्बन्धमें कौतुक-कुतूहलोंसे विजड़ित एक विभीषिका-सी खड़ी कर दी।

अभिज्ञ पाठकमात्र ही अब इस बातका अनुमान लगा चुके होंगे कि सिसी-देवताका वाहन है केटी मीटरका बड़ा भाई नरेन। अब चर्चा उठी है कि उसकी बहुत दिनोंसे चली-आई-हुई वाहन-दशा अब वैवाहनकी दशम-दशामें उत्तीर्ण होगी। सिसी अब मन-ही-मन राजी है। परन्तु ऊपरसे ऐसा भाव दिखाकर कि 'राजी नहीं है', उसने एक प्रकारका प्रदोष-अन्धकार खड़ा कर रखा है। नरेनने सोच रखा था कि अमितकी सम्मतिकी सहायतासे वह इस संशय-दशाको पार कर जायगा, पर, अमित अहमक न तो कलकत्ते ही लौट रहा है और न चिट्ठीका जवाब ही दे रहा है। अंगरेजीके जितने भी गहि़त शब्दभेदी वाक्य उसे मालूम थे उन-सबको वह प्रकट और स्वगत उक्तियोंमें लापता अमितकी ओर फेंक चुका। यहाँ तक कि तारसे अत्यन्त बेतार वाक्य भी शिलौंग भेजनेसे वह बाज नहीं आया; किन्तु उदासीन नक्षत्रको लक्ष्य करके छोड़ी-हुई उद्धत हवाई-आतिशबाजीकी तरह कहीं भी उसकी दाह-रेखा नहीं पड़ी। अन्तमें सर्वसम्मतिसे तय हुआ कि असल हालतकी सरे-जमीन तहकीकात होना जरूरी है। सर्वनाशके स्रोतमें अमितकी चोटीका क्षोर भी अगर कहीं थोड़ा-बहुत दिखाई दे, तो उसे खींचकर शीघ्र किनारे लगाना आवश्यक है। इस विषयमें उसकी अपनी बहन सिसीकी अपेक्षा पराई बहन केटीका उत्साह कहीं ज्यादा है। हमारे यहाँ राजनीतिमें जैसा पश्चात्ताप प्रचलित है कि 'भारतका धन विदेश चला जा रहा है', केटी मीटरका भाव लगभग उसी जातिका है।

नरेन मीटर एक लम्बे अरसे तक योरोपमें था। वह जर्मींदारका लड़का ठहरा, आमदनीकी कोई चिन्ता नहीं, खर्चके लिए भी वही बात थी, और फिर विद्यार्जनकी चिन्ता भी उसी मात्रामें हलकी थी। विदेशमें खर्चकी तरफ हो

उसने ज्यादा ध्यान दिया था, अर्थ और समय दोनों ही दिशामें। अपनेको कलाकारके रूपमें परिचित करा सकनेसे वहाँ एकसाथ दायित्वमुक्त स्वाधीनता और अहैतुक-आत्मसम्मान प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए, वह कला-सरस्वतीके अनुसरणमें योरोपके बहुतसे बड़े-बड़े शहरोंके बोहमियन^१ मुहल्लोंमें रहा है। कुछ दिनों तक कोशिश करनेके बाद स्पष्टवक्ता हितैषियोंके कठोर अनुरोधसे उसे चित्र बनाना छोड़ देना पड़ा; अब वह अपनेको चित्रकलाकी समझदारीमें 'परिपक्व' दशानिके लिए अपना प्रमाण-निरपेक्ष परिचय दिया करता है। चित्र-कलाको वह फला-फुला नहीं सकता, पर, दोनों हाथोंसे उसे मसल जरूर सकता है। फरासीसी ढाँचेमें उसने अपनी मूँछोंके दोनों किनारे बड़े जतनसे कण्टकित कर लिये हैं, और साथ ही सिरके घने-लम्बे बालोंके प्रति अति-सयत्न अवहेलना भी करता है। वैसे चेहरा उसका अच्छा ही है, किन्तु उसे 'और भी अच्छा' बनानेकी बहुमूल्य साधनामें उसकी आईनेदार टेबिल पैरिसके विलास-वैचित्र्यसे भाराक्रान्त बनी रहती है। उसके मुँह-हाथ धोनेकी टेबिलके उपकरण दशाननके लिए भी अधिक प्रमाणित हो सकते थे। कीमती 'हैवाना'-सिगार सुलगाना और दो-चार कश खींचकर अनायास ही उसको अवज्ञा करना, और हर महीने पहननेके कपड़े फरासीसी धोबीके यहाँसे धुलवाकर पोस्ट-पार्सलसे मँगवाना इत्यादि विशिष्टताओंको देखते-हुए उसके आभिजात्यके विषयमें सन्देह करनेका साहस नहीं होता। योरोपकी श्रेष्ठ दरजी-शालाके रजिस्टरमें उसकी देहका नाप और नम्बर लिखे हुए हैं, वह भी ऐसी जगह जहाँ पटियाला और कपूरथलाके राजाओंके नाम भी मिल सकते हैं। उसकी बाजारू अंगरेजी-भाषाका उच्चारण विजड़ित और विलम्बित होता है; और उसमें अध-खुली आँखोंके अलस कटाक्षका सहयोग अनतिव्यक्त-सा रहता है। जो लोग इस विषयसे अनुभवी हैं उनके मुँह सुना गया है कि इंग्लैण्डके बहुतसे नीले खूनके अमीरोंके कण्ठस्वरमें इस तरहकी गद्गद जड़ताका भाव पाया जाता है। इसके सिवा घुड़दौड़ी अपभाषा और विलायती शपथोंके दुर्वाक्य-सम्पदमें वह अपने दिलके लोगोंमें आदर्श पुरुष है।

केटी मीटरका असल नाम केतकी मित्र है। और, चाल-चलन उसका है बड़े भाईके कायदे-कारखानेमें भवकेकी परम्परासे शोधित तीसरी बार चुयाये हुए विलायती कौलीन्यके तेज ऐसेन्सके समान। साधारण भारतीय कन्याके दीर्घकेश-गौरवके गर्वके प्रति गर्व करके ही मानो उसने अपने बालोंपर कैची चलवा दी है, जिससे उसके जूड़ेने मेढ़की या मेढ़कीके बच्चेकी पूँछकी तरह विलुप्त होकर अनुकरणमें फुदकनेकी परिणत अवस्था प्राप्त कर ली है। उसके चेहरेकी स्वाभाविक गौरिमा रंगके प्रलेपसे कलई की-हुई है। जीवनकी आद्य-लीलामें केटीकी काली आँखोंका भाव था स्निग्ध; अब मालूम होता है कि वह हरएकको देख ही नहीं पाती। और अगर देख भी लेती है तो उसपर उसका ध्यान ही नहीं जाता, और कदाचित् ध्यान जाता भी है तो उस दृष्टिमें मानो अधखुली छुरीकी-सी झलक रहती है। प्रारम्भिक उमरमें उसके ओठोंपर सरल माधुर्य था, और अब, बार-बार टेढ़े होते रहनेसे उनमें टेढ़े अङ्गुश जैसा भाव स्थायी हो गया है। खासकर तरुणियोंके वेशके वर्णनमें एक तो मैं वैसे ही अनाड़ी हूँ, और उसपर उसकी परिभाषा नहीं जानता। कुलजमा जो दिखाई देता है वह यह है कि ऊपर एक कैचुली-जैसा बारीक फरफराता-हुआ आवरण है; और अन्दरके कपड़ेमेंसे एक दूसरे ही रंगका आभास झलकता रहता है। छातीका बहुतसा हिस्सा खुला-हुआ है और खुली-हुई बाहोंको कभी टेबिलपर, कभी कुरसीके इत्थेपर और कभी परस्पर जड़ित करके जतनकी भङ्गिमामें शिथिल छोड़ रखनेकी साधना उसकी सुसम्पूर्ण है। और जब वह सुमाजित नाखूनोंसे रमणीय अपनी दो उँगलियोंके बीच सिगरेट दबाकर पीती है तो ऐसा लगता है कि वह जितना अलङ्कारणके अङ्गरूपमें है उतना धूमपानके लिए नहीं। सबसे ज्यादा जो बात मनमें दुश्चिन्ताका उद्रेक करती है वह है उसके समुच्च खुरदार जूतोंकी कुटिल भङ्गिमा, मानो बकरी-जातीय जीवके आदर्शको भूलकर नारीके पाँवोंको गढ़न देते समय सृष्टिकर्त्ता गलती कर गये हों, और अब मोची-द्वारा प्रदत्त पदोन्नतिकी विचित्र वक्रतासे धरणीको पीड़ित करके चलनेके द्वारा मानो क्रम-विकाशकी त्रुटि ठीक की जा रही हो।

सिसी अभी तक बीचकी जगहमें हैं। अन्तकी डीग्री उसे अभी नहीं

मिली, पर, प्रमोशन लेती चली जा रही है। ठहाकेकी हँसीसे, बेहद खुशीसे, अनर्गल बातचीतसे उसमें सर्वदा एक प्रकारका चलन-ढलन उबाल लिया करता है, उपासक-मण्डलीमें इसका बहुत आदर है। राधिकाकी वयःसन्धिके वर्णनमें देखा जाता है कि कहीं उसका भाव परिपक्व है तो कहीं अपरिपक्व। सिसीकी भी वही दशा है। खुरदार जूतोंमें युगान्तरका जय-तोरण तो आ गया, किन्तु माथेके अनवच्छिन्न जूड़ेमें अतीत युग ज्योंका त्यों रह गया है। पाँवोंकी ओर साड़ीका अरज दो-तीन इंच ओढ़ा है, पर, ऊपरके ओढ़नेमें असंवृतिकी सीमा अभी तक लज्जाकी ओर मुँह किये-हुए है। अकारण दस्ताने पहननेका अभ्यास है, किन्तु अभी भी एक हाथके बजाय दोनों हाथोंमें सोनेकी एक-एक चूड़ी पड़ी है। सिगरेट पीनेमें अब सिरमें चक्कर नहीं आता, पर, पान खानेकी आसक्ति अब भी प्रबल है। बिस्कुटकी टीनमें भरकर कोई उसे अचार और अमावट बगैरह भेज दे तो उसमें उसे आपत्ति नहीं होती। क्रिस्टमसमें प्लम पूडिंग और तीज-त्योहारके दिन पिठीकी बनी चीज इन दोनोंमेंसे अन्तकी चीजपर ही उसकी लोलुपता कुछ ज्यादा है। फिरंगी नाचवालीसे उसने नाच सीखा है, पर, नाचकी सभामें जोड़ी मिलाकर चक्कर-नाच नाचनेमें अब भी उसे जरा सङ्कोच-सा मालूम होता है।

अमितके सम्बन्धमें अफवाहें सुन-सुनके सिसी-लिसी आदि इतनी उद्विग्न हो उठीं कि आखिर उन्हें शिलाँग चला आना पड़ा। खासकर इनके परिभाषागत श्रेणी-विभागमें लावण्य गवर्नेस है। अपनी श्रेणीके पुरुषोंकी जात मारनेके लिए ही उसका 'स्पेशल क्रियेशन' है। मनमें इस बातका सन्देह नहीं कि धन और सम्मानके लोभसे ही लावण्यने अमितको कसके जकड़ लिया है, और कोई छुड़ाना चाहे तो उस काममें स्त्रियोंको ही सम्मार्जन-पटु हस्तक्षेप करना पड़ेगा। चतुर्मुखने शायद अपनी चार-जोड़ी आँखोंसे स्त्रियोंकी ओर कटाक्ष-पात और पक्षपात एकसाथ ही किया होगा, इसीलिए शायद स्त्रियोंके सम्बन्धमें विचार-बुद्धिमें पुरुषोंको उन्होंने ठोस बेवकूफ बनाकर गढ़ा है। इसीसे स्वजातिके मोहसे मुक्त आत्मीय स्त्रियोंकी सहायताके बिना अनात्मीय स्त्रियोंके मोह-जालसे पुरुषोंका उद्धार पाना इतना दुःसाध्य है।

फिलहाल, 'ऐसे उद्धारकी प्रणाली कैसी हो', इस विषयमें दो नारियोंने आपसमें एक परामर्श तय किया है। निश्चय किया है कि शुरूमें अमितको कुछ भी न जानने दिया जाय और उसके पहले ही शत्रुपक्ष और रणक्षेत्रका अच्छी तरह निरीक्षण कर लिया जाय। फिर देख लिया जायगा कि मायाविनीमें कितनी शक्ति है।

शिलांग पहुँचते ही उन्होंने देखा कि अमितके ऊपर एक-फेर गहरा ग्राम्य रंग चढ़ा-हुआ है। इसके पहले भी अपने दलके साथ अमितकी भावधाराका कोई मेल नहीं था। फिर भी वह उस समय प्रखर नागरिक था, मजा-घसा चमचमाता-हुआ। और अब खुली हवामें रंग कुछ मैला हो गया हो सो बात नहीं, बल्कि कुलजमा उसपर मानो पेड़-पौधोंका आमेज-सा लग गया है। मानो वह कच्चा-सा हो गया है; और इनलोगोंकी रायसे कुछ बेवकूफ भी। उसका व्यवहार लगभग साधारण आदमी-जैसा हो गया है। पहले वह जीवनके समस्त विषयोंके पीछे हँसीका हथियार लिये फिरता था, अब उसके वह शौक नहींके बराबर है। और इसीको इनलोगोंने समझ लिया है 'अन्तकालका लक्षण'।

सिसीने एक दिन साफ-साफ ही कह दिया, "दूरसे हम समझ रही थीं कि तुम शायद खसिया होनेकी तरफ उतर रहे हो। अब देखती हैं कि तुम हो गये हो, जिसको कि कहते हैं 'ग्रीन', यहाँके पाइनके पेड़ोंकी तरह, हो सकता है कि पहलेसे स्वास्थ्यकर दशामें हो, किन्तु पहले-जैसे इण्टरेस्टिंग नहीं।"

अमितने बर्ड्सवर्थकी कवितामेंसे उद्धरण देते-हुए कहा, "प्रकृतिके संसर्गमें रहते-रहते 'निर्वाक् निश्चेतन पदार्थ'की छाप लग जाया करती है शरीर और मनपर, कविने जिसे 'mute insensate things' कहा है।"

सुनकर सिसी सोचने लगी, निर्वाक् निश्चेतन पदार्थके विषयमें हमें कोई शिकायत नहीं, जो लोग बहुत ज्यादा सचेतन हैं और जो लोग बात कहनेकी मधुर प्रगल्भतामें सुपटु हैं उन्हींके विषयमें हमें चिन्ता है।

इनलोगोंको यह आशा थी कि लावण्यके विषयमें अमित स्वयं ही बात छेड़ेगा। किन्तु एक दिन, दो दिन, तीन दिन बीत गये, वह बिल्कुल चुप है।

सिर्फ एक बात अन्दाजसे समझ ली गई कि अमितकी आशा या साधकी नाव फिलहाल कुछ ज्यादा लहरोंमें पड़ी-हुई है। इनलोगोंके विस्तरसे उठके तैयार होनेके पहले ही अमित कहींसे घूमकर वापस आ जाता है, उसके बाद उसका चेहरा देखकर मालूम होता है कि आँधीकी हवामें कदली-वृक्षके उन पत्तोंकी समान जो खण्ड-खण्ड होकर लटकते-हिलते रहते हैं, उसका भाव भी शत-विदीर्ण हो रहा है। और भी ज्यादा चिन्ताकी बात यह है कि रवीन्द्रनाथ ठाकुरकी किताब भी किसी-किसीने उसके विस्तरपर पड़ी देखी है। भीतरके पन्नेमें लावण्यके नाममेंसे शुरूका अक्षर लाल स्याहीसे कटा-हुआ है। शायद नामके पारस-पत्थरने ही चीजकी कीमत बढ़ा दी है।

अमित क्षण-क्षणमें बाहर निकल जाता है। वह कहता है, 'भूख संग्रह करने जा रहा हूँ।' भूख कहाँ जानेसे संग्रह होती है, और भूख उसकी है भी अत्यन्त प्रबल, यह औरोंसे छिपा नहीं था। किन्तु अपर पक्ष ऐसा भोलापनका भाव दिखाता कि मानो शिलाँगकी हवामें भूख बढ़ानेकी शक्तिके सिवा और भी कोई चीज हो सकती है, इस बातको कोई सोच ही नहीं सकता। सिसी मन-ही-मन हँसती है, और केटी मन-ही-मन जला करती है। अमितके लिए अपनी ही समस्या इतनी कठिन हो रही है कि बाहरके किसी भी चाञ्चल्यकी तरफ ध्यान देनेकी उसमें शक्ति ही नहीं। इसीसे, वह बिना किसी सङ्कोचके इन सखी-युगलसे कह जाता, "जा रहा हूँ किसी भरनेकी तलाशमें।" किन्तु इस बातको समझ ही नहीं पाता वह कि 'भरना है, किस श्रेणीका और उसकी गति किस तरफ है' - इस विषयमें दूसरोंके मनमें कुछ धोखा या सन्देह हो सकता है। आज कह गया है, "एक जगह नारंगीके शहदका सौदा करने जा रहा हूँ।" दोनों बहनोंने अत्यन्त निरीह-भावसे सरल भाषामें उससे कहा, "इस अपूर्व मधुके विषयमें हमारे मनमें दुर्दमनीय कुतूहल हो रहा है, हम भी तुम्हारे साथ चलना चाहती हैं।" इसपर अमितने कहा, "मार्ग दुर्गम है, वहाँ पहुँचना यान-वाहनके बूतेके बाहरकी बात है।" इतना कहकर आलोचनाके प्रथम अंशको तोड़कर तुरत ही भाग निकला वह। इस नवीन मधुकरके डैनोंकी चञ्चलताको देखकर दोनों सखियोंने तय कर लिया कि 'बस अब देर

करना ठीक नहीं है, आज ही नारंगीके बगीचेपर धावा बोल देना चाहिए ।’ इधर, नरेन गया है घुड़दौड़के मैदानमें । सिसीको साथ ले जानेके लिए उसका बहुत आग्रह था । किन्तु सिसी नहीं गई । इस निवृत्ति या मनाहीको भेलनेमें बेचारेको कितने शम-दमकी जरूरत हुई होगी, इस बातको भुक्तभोगीके सिवा और कौन समझ सकता है ।

१५ — व्याघात

दोनों सखियाँ योगमायाके घर पहुँचीं, और दरवाजा पार होकर आगे बढ़ीं, तो वहाँ उन्हें नौकरोँमेंसे कोई दिखाई नहीं दिया । सहनके पास पहुँचने पर देख पड़ा कि मकानके चबूतरेपर एक छोटी टेबिल लगाकर शिक्षायात्री और छात्रा दोनों मिलकर कुछ पढ़-पढ़ा रही हैं । समझनेमें देर न लगी कि इनमेंसे बड़ी लावण्य है ।

केटीने खटाखट ऊपर चढ़कर अंगरेजीमें कहा, “दुःखित हूँ ।”

लावण्य कुरसी छोड़कर उठ खड़ी हुई, बोली, “किसको चाहती हैं आप ?”

केटीने एक क्षणमें अपनी दृष्टिको लावण्यके आपादमस्तकपर प्रखर भाड़की तरह फेरते-हुए कहा, “मिस्टर आँमिट्राये यहाँ आये हैं या नहीं, देखने आई हैं ।”

लावण्य सहसा समझ ही न सकी कि आँमिट्राये किस जातिका जीव है । उसने कहा, “उनको तो हम नहीं जानती ।”

चटसे दोनों सखियोंकी आँखोंमें बिजली-सी दौड़ गई और आँखों ही आँखोंमें परस्पर इशारा हो गया, उनके चेहरोंपर तिरछी हँसीकी एक डोरी-सी खिंच गई । केटीने झुँझलाकर सिर हिलाते-हुए कहा, “हम तो जानती हैं, इस घरमें उनका आना-जाना है oftener than is good for him,

दोनोंका हावभाव देखकर लावण्य चौंक उठी, समझ गई कि ये कौन हैं और उसने कैसी गलती कर डाली है । लज्जित-सी होकर वह बोली, “माको बुलाये देती हूँ, उनसे आपको सब मालूम हो जायेगा ।”

लावण्यके जाते ही केटीने सुरमासे पूछा, “ये तुम्हारी टीचर हैं ?”
“हाँ ।”

“नाम शायद लावण्य है ?”

“हाँ ।”

“गॉट् मैचेस ?”

सहसा दिआसलाईकी जरूरतका अन्दाजा न लगा सकनेके कारण सुरमा बातका कुछ अर्थ ही न समझ सकी,—मुँहकी ओर ताकती रही ।

केटीने कहा, “दिआसलाई है ?”

सुरमा दिआसलाईका बक्स उठा लाई । केटीने सिगरेट सुलगाकर उसका कश खींचते-हुए सुरमासे पूछा, “अंगरेजी पढ़ती हो ?”

सुरमा स्वीकृति-सूचक सिर हिलाकर तुरत ही तेजीसे भीतर चली गई । केटीने कहा, “गवरनेससे इस लड़कीने और चाहे जो भी सीखा हो, पर मैनेस (शिष्टाचार) नहीं सीखा ।”

इसके बाद दोनों सखियोंमें टिप्पणी होने लगी । “फेमस लावण्य ! ‘डिल्लीशस’ ! शिलौंग-पहाड़को बॉलकैनो बना डाला है, भूकम्पने ऑमिटके हृदय-तटपर दरारें कर दी हैं इधरसे उधर तक ! सिली ! मेन आरफनी !”

सिसी ठहाका मारकर हँस उठी । इस हँसीमें उदारता थी । कारण, पुरुषोंकी मूर्खता उसके लिए कभी भी पश्चात्तापका कारण नहीं बनी । उसने तो पथरीली जमीनमें भी भूकम्प कराया है, उसे बिलकुल टूक-टूक कर डाला है । किन्तु यह कैसी दुनियासे न्यारी बात ! एक तरफ केटी-जैसी लड़की, और दूसरी ओर यह विचित्र ढंगके कपड़े पहने-हुए गवरनेस ! मुँहमें मक्खन दो तो न गले, जैसे भीगे लत्तोंकी पोटली हो । पास बैठो तो मनपर बरसाती बिस्कुटकी तरह फूँदे पड़ जाते हैं । ऑमिट कैसे इसे एक मोमेण्ट (क्षण) के लिए सह लेता है ?

“सिसी, तुम्हारे भाई-सा’बका मन हमेशा ऊपरको पैर करके चला करता है,—न-जाने कौनसी ‘दुनियासे न्यारी’ उलटी बुद्धिसे इस लड़कीको सहसा उन्हींने एञ्जेल समझ लिया है !”

इतना कहकर, केटीने, टेबिलपर रखी-हुई ऐलजेब्राकी किताबके सहारे सिगरेट रखकर, अपनी चाँदीकी जंजीरदार शृङ्गारकी थैली निकालकर, अपने

चेहरेपर जरा-सा पावडर लगा लिया और अंजनकी पेन्सिलसे भौंहोंकी डोरियाँ जरा-कुछ उभार लीं। भाई-साहबकी विवेकशून्यतापर सिसीको काफी गुस्सा नहीं आता, यहाँ तक कि भीतर-ही-भीतर जरा-कुछ र्नेह-सा ही उमड़ आता है। साराका सारा गुस्सा जाकर पड़ता है पुरुषोंकी मुग्धनयन-विहारिणी जाली एज्जेलोंपर। भइयाके सम्बन्धमें सिसीकी इस सकौतुक उदासीनतासे केटीका धैर्य टूट जाता है। तबीयत होती है कि उसे वह पकड़कर खूब जोरसे भक्कभोर डाले।

इतनेमें, सफेद गरदकी साड़ी पहने-हुए योगमाया निकल आई। लावण्य नहीं आई। केटीके साथ आया था आँखों-तक-ठक-देनेवाले बड़े-बड़े बालों-वाला छोटा-सा 'टैब' नामधारी कुत्ता। उसने एक बार घ्राणेन्द्रियसे लावण्य और सुरमाका कुछ परिचय प्राप्त कर लिया था। योगमायाको देखकर सहसा उस कुत्तेके मनमें कुछ उत्साह पैदा हुआ,—चटसे आगे बढ़कर उसने सामनेके दौनों पैरोंसे योगमायाकी निर्मल साड़ीपर धूल-मिट्टीके हस्ताक्षर अंकित करके अपनी अकृत्रिम प्रीतिका परिचय दे दिया। सिसी उसकी गरदन पकड़कर खींच लाई केटीके पास। केटीने उसकी नाकपर तर्जनी मारकर कहा, “नाटी डॉग !”

केटी कुरसीसे उठी ही नहीं। सिगरेट खींचती-हुई अत्यन्त निलिप्त और तिरछे ढंगसे जरा-सी गरदन टेढ़ी करके योगमायाका निरीक्षण करने लगी। लावण्यकी अपेक्षा योगमायापर ही शायद उसका ज्यादा आक्रोश है। उसकी धारणा है कि लावण्यके इतिहासमें कोई दोष है। योगमाया ही मौसी बनकर अमितके माथे उसे मड़ देनेका कौशल कर रही हैं। पुरुषोंको ठगनेके लिए ज्यादा बुद्धिकी जरूरत नहीं होती, स्वयं विधाताकी अपने हाथकी बनाई-हुई 'अँधेरी' उनकी दोनों आँखोंपर जन्मसे ही बँधी-हुई है।

सिसीने सामनेकी तरफ जरा बढ़कर योगमायाको नमस्कारका जरा-सा आभास देते-हुए कहा, “मैं सिसी हूँ, अमीकी बहन।”

योगमायाने जरा हँसते-हुए कहा, “अमित मुझे मौसी कहता है, उस नाते मैं तुम्हारी भी मौसी हुई, बेटी !”

केटीके रंग-ढंग देखकर योगमायाने उसकी तरफ ध्यान ही नहीं दिया। सिसीसे बोली, “आओ, बेटी, भीतर चलके बैठें।”

सिसीने कहा, “वक्त नहीं है, सिर्फ पता लगाने आई थी कि अमित यहाँ आये हैं या नहीं।”

योगमायाने कहा, “अभी तक तो नहीं आया।”

“कब आयेंगे मालूम है?”

“ठीक नहीं कह सकती, - अच्छा मैं पूछ आऊँ जरा।”

केटी अपने आसनपर बैठी-बैठी ही तीव्र स्वरमें बोल उठी, “अभी-अभी जो मास्टरानी यहाँ बैठी पढ़ा रही थी, उसने तो ऐसा भाव दिखाया कि वह अमितको बिलकुल जानती ही नहीं।”

योगमाया चक्रमें पड़ गई। समझ गई कि कहीं-न-कहीं कुछ गलत-फहमी हो गई है। यह भी समझ गई कि इनके आगे इज्जत रखना मुश्किल है; और, दूसरे ही क्षण अपने मौसीत्वको वापस लेनी-हुई बोलीं, “सुना है, अमित बाबू आपके होटलमें ही रहते हैं, उनकी खबर आपलोगोंको ही ज्यादा मालूम होनी चाहिए।”

केटी जरा-कुछ स्पष्ट-रूपसे ही हँस दी, जिसे भाषामें व्यक्त किया जाय तो कहना पड़ेगा, ‘झिपा सकती हो, किन्तु धोखा नहीं दे सकती।’

असल बात यह है कि आरम्भमें ही लावण्यको देखकर, और, ‘अमितको वह नहीं जानती’, यह सुनकर केटी मन-ही-मन आग-बबूला हो रही थी। किन्तु सिसीके मनमें मात्र आशङ्का है, जलन नहीं। योगमायाके सुन्दर चेहरेके गाम्भीर्यने उसके मनको आकर्षित कर लिया था। इसीसे, जब उसने देखा कि केटीने स्पष्ट अवज्ञा करते-हुए कुरसी नहीं छोड़ी तब उसके मनमें कैसा-तो एक तरहका सङ्कोच आने लगा। साथ ही, उसे किसी विषयमें केटीके विरुद्ध जानेकी हिम्मत भी नहीं पड़ी, क्योंकि केटीके विद्रोह-दमनमें हाथ तेज चलते हैं, जरा भी विरोध वह नहीं सह सकती। कर्कश व्यवहार करनेमें उसे जरा भी सङ्कोच नहीं होता। अधिकांश मनुष्य ही भीरु होते हैं, निःसङ्कोच दुर्व्यवहारके आगे वे हार मान लेते हैं। अपनी निरन्तरकी कठोरतापर केटीको एक तरहका गर्व है, खुद जिसे वह ‘मिठमुँही भलमनसाहत’ कहती है उसका कोई लक्षण अपनी मित्रमण्डलीके किसीमें मिल जाय तो उसे वह परेशान कर

डालती है। रूढ़ताको वह निष्कपटता कहकर बड़ाई किया करती है, और जो उसकी इस रूढ़ताके आघातसे सङ्कुचित हैं वे किसी कदर उसे प्रसन्न रखकर आराम पाते हैं। सिसी उसी दलकी है। वह मन-ही-मन केटीसे जितनी ही डरती है उतनी ही उसकी नकल करती है, दिखाना चाहती है कि वह भी दुर्बल नहीं है। पर, हमेशा उससे ऐसा नहीं बन पड़ता। केटीने ताड़ लिया था कि उसके व्यवहारके विरुद्ध सिसीके मनके एक कोनेमें एक तरहकी मुँह छिपानेवाली आपत्ति छिपी-हुई है। इसीलिए उसने तय किया था कि योगमायाके सामने सिसीके इस सङ्कोचको कड़ाईके साथ तोड़ देना होगा। वह कुरसीसे उठी और एक सिगरेट लेकर उसने सिसीके मुँहमें लगा दी, और अपनी सुलगी-हुई सिगरेट मुँहमें लिये-हुए ही सिसीकी सिगरेट सुलगानेके लिए मुँह बढ़ा दिया। 'ना' करनेकी सिसीको हिम्मत नहीं हुई। लोलकियोंमें जरा सुखी आ गई। फिर भी जबरदस्ती उसने ऐसा एक भाव दिखाया कि मानो उनके पश्चात्य भावपर जो लोग जरा भी भौंहें सिकोड़ते हैं उनके मुँहपर वह चुटकी बजानेकी तैयार है, *that much for it !*

ठीक इसी समय अमित आ पहुँचा। लड़कियाँ तो देखके दंग रह गईं। जब वह होटलसे निकला था तब उसके सिरपर था फेल्ड हैट और बदनपर विलायती कोट। यहाँ देखा गया कि वह धोती पहने-हुए है और ऊपरसे दुशाला डाल रखा है ! इस वेशान्तरका अद्भुत था उसका वही 'भोंपड़ा'। वहाँ किताबोंका एक शेल्फ है और कपड़ोंका एक द्रङ्क, और है योगमायाकी दी-हुई एक आराम-कुरसी। होटलमें दोपहरका खाना खाकर वह वहीं चला जाता है। आजकल लावण्यका कड़ा शासन है, सुरमाको पढ़ाते समय भरना अथवा नारंगीके सन्धानमें वहाँ किसीको घुसने नहीं दिया जाता। लिहाजा, तीसरे पहर साढ़े-चार बजे, चाय-पानकी सभाके पहले, इस घरमें दैहिक या मानसिक किसी प्रकारकी प्यास मिटानेका सौजन्य-सम्मत मौका अमितके लिए नहीं था। इसलिए बेचारा इतना समय किसी कदर बिताकर, कपड़े बदलकर निर्दिष्ट समयपर ही यहाँ आता था।

आज होटलसे निकलनेके पहले ही कलकत्तेसे अमितकी अँगूठी आ गई । कैसे उस अँगूठीको वह लावण्यको पहनायेगा, इस विषयके सम्पूर्ण अनुष्ठानकी कल्पना वह बहुत देर तक बैठा-बैठा करता रहा है । असलमें आज है उसका एक 'विशेष दिन' । ऐसे दिनको तो बाहर ज्योड़ीपर बिठाये नहीं रखा जा सकता । आज सब काम बन्द हो जाने चाहिए । मन-ही-मन उसने निश्चय कर रखा है कि लावण्य जहाँ बैठी पढ़ा रही है वहाँ जाकर वह कहेगा, 'किसी दिन हाथीपर सवार होकर बादशाह आया था, किन्तु तोरण था छोटा, कहीं सिर न झुकाना पड़े, इस वजहसे वह लौट गया था, नये-बने प्रासादमें उसने प्रवेश नहीं किया । आज आया है हमारा एक महादिन, किन्तु तुमने अपने अवकाशका तोरण छोटा कर रखा है । उसे तोड़ो, राजाको सिर उठाये ही अपने घरमें प्रवेश करने दो ।'

अमित यह बात भी ध्यानमें रखकर आया था कि लावण्यसे वह कहेगा कि 'ठीक समयपर आनेका ही नाम पंचुऐलिटी है, किन्तु घड़ीका समय ठीक समय नहीं है । घड़ी तो केवल समयके नम्बर जानती है, समयकी कीमत कैसे जान सकती है वह ?

अमितने बाहरकी ओर निगाह उठाकर देखा, बादलोंसे आकाश म्लान हो रहा है, उजालेकी शकल शामके पाँच-छै बजेकी-सी हो रही है । उसने फिर घड़ी नहीं देखी, इस डरसे कि कहीं घड़ी अपने अमर्द्र इशारेसे आकाशका प्रतिवाद न कर बैठे । वैसे ही, जैसे बहुत दिनोंसे ज्वरसे पीड़ित बच्चेकी मा लड़केकी देह जरा ठण्डी देखती है तो फिर उसे थर्मामीटर लगानेकी हिम्मत नहीं पड़ती कि कहीं उसमें ज्वरकी गरमी न आ जाय । अमित आज निर्दिष्ट समयसे काफी पहले आ गया था । कारण, दुराशा निर्लज्ज होती है ।

बरामदेमें जिस जगह बैठकर लावण्य अपनी क्लात्राको पढ़ाती है, रास्तेसे आते-हुए वह जगह दिखाई देती है । आज देखा कि वह जगह सूनी है । अमितका मन आनन्दके मारे उकल पड़ा । और तुरत उसने घड़ीकी तरफ नजर उठाकर देखा । अभी तक तीन बजके बीस ही मिनट हुए हैं ! उस दिन उसने लावण्यसे कहा था, 'नियम पालन करना मनुष्यका काम है और अनियम

देवताओंका । मर्त्यमें हम नियमोंकी साधना इसीलिए करते हैं कि स्वर्गमें हमें अनियम-अमृतपर अधिकार प्राप्त हो । यदि वह स्वर्ग कभी-कभी मर्त्यमें ही दिखाई दे, तो अवश्य ही हमें उसे अभिनन्दनके साथ ग्रहण करना चाहिए ।’ उसे आशा हुई कि लावण्यने नियम तोड़नेके गौरवको समझ लिया शायद, और उसके मनपर सहसा आज किसी तरह ‘विशेष दिनका’ स्पर्श लग गया शायद, साधारण दिनकी चहारदीवारी टूट गई आज ।

पास पहुँचकर उसने देखा कि योगमाया अपने कमरेके बाहर स्तब्ध-सी खड़ी हैं ; और सिसी केटीके मुँहकी जलती-हुई सिगरेटसे अपने मुँहमें-लगी सिगरेट सुलगा रही है । योगमायाका यह असम्मान इच्छाकृत है, इस बातको समझनेमें उसे देर न लगी । ‘टैबी’-कुत्ता अपनी प्रथम मैत्रीके उच्छ्वासमें बाधा पाकर केटीके पैरोंके पास पड़ा जरा सो लेनेकी कोशिश कर रहा था । अमितके पहुँचते ही वह उसका स्वागत करनेके लिए फिर असंयत हो उठा । सिसीने फिर उसे ताड़ना देकर समझा दिया कि ‘उसकी इस सौजन्य-प्रकाशन-पद्धतिका यहाँ कोई आदर नहीं होनेका ।’

दोनों सखियोंकी ओर बगैर देखे ही अमितने दूरसे ही ‘मौसीजी’ कहकर पुकारा, और फिर उनके पैरोंके पास झुककर पाँव छुए । खासकर इस समय इस तरहसे प्रणाम करना उसकी प्रथामें नहीं था । उसने पूछा, “मौसीजी, लावण्य कहाँ है ?”

“क्या मालूम, बेटा, घरमें ही कहीं होगी ।”

“अभी तो सुरमाके पढ़ानेका समय खतम नहीं हुआ ?”

“शायद इनलोगोंके आ-जानेसे छुट्टी लेकर भीतर चली गई है ।”

“चलो, एक बार देख आयें, वह क्या कर रही है ।”

योगमायाको लेकर अमित सीधा भीतर चला गया । सामने और भी कोई सजीव वस्तु है, इस बातकी उसने सम्पूर्णतया उपेक्षा कर दी ।

सिसी जरा जोरसे बोल उठी, “अपमान ! चलो, केटी, घर चलें ।”

केटी भी कम नहीं जली । पर, आखिर तक देखे बगैर वह जाना नहीं चाहती । सिसीने कहा, “कोई नतीजा नहीं निकलेगा ।”

केटीकी बड़ी-बड़ी आँखें फट-सी गई ; वह बोली, “निकलेगा कैसे नहीं, निकलके रहेगा ।”

और भी थोड़ा-सा समय बीत गया । सिसीने फिर कहा, “चलो, बहन, अब जरा भी ठहरनेको तबीयत नहीं होती ।”

केटी बरामदेमें धरना दिये बैठी रही । बोली, “आखिर उन्हें निकलना तो यहींसे पड़ेगा ।”

अन्तमें अमित वापस आया और साथमें ले आया लावण्यको । लावण्यके मुँहपर एक तरहकी निर्लिप्त शान्ति थी । उसमें जरा भी क्रोध नहीं, दम्भ नहीं, अभिमान नहीं ।

योगमाया पीछेके कमरेमें ही थीं, उनकी बाहर आनेकी कतई इच्छा नहीं थी । अमित उन्हें भी पकड़ लाया । क्षण-भरमें केटीकी नजर पड़ गई लावण्यके हाथकी अँगूठीपर । उसके माथेका खून खौल उठा, आँखें हो उठीं लाल-सुर्ख, पृथ्वीको लात मारनेकी इच्छा होने लगी ।

अमित बोला, “भौसीजी, यह मेरी बहन है, शमिता । पिताजीने शायद मेरे नामके साथ छन्द मिलाकर नाम रखा था, पर, रह गया अमित्राक्षर । और ये हैं केतकी, मेरी बहनकी सखी ।”

इस बीचमें एक और उपद्रव खड़ा हो गया । सुरमाकी एक पालतू बिल्लीके बाहर निकलते ही टैबीने अपनी कुक्कुरीय नीतिमें उस स्पर्धाको युद्ध-घोषणाका ‘वैध कारण’ मान लिया । वह एक बार अग्रसर होकर उसे फटकारता और फिर उसके उद्यत नाखून और फुसकारको देखकर युद्धके आंशुफलके सम्बन्धमें संशयापन्न होकर लौट आता । और ऐसी अवस्थामें, कुछ दूरसे ही, अहिंस गर्जन-नीतिको निरापद वीरता प्रकट करनेका उपाय समझकर उसने जोर-शोरसे चीत्कार करना शुरू कर दिया । बिल्ली उसका कुछ प्रतिवाद किये बिना ही पीठ फुलाकर चली गई । अब केटीसे नहीं सहा गया । प्रबल आक्रोशसे कुत्तेके कान ऐंठने लगी वह । इस ‘कान ऐंठन’ का बहुतसा अंश अपने भाग्यके प्रति ही था । कुत्तेने क्याँव-क्याँव करके इस असद्व्यवहारके सम्बन्धमें अपना तीव्र अभिमत प्रकट किया । भाग्य चुपके-चुपके हँस दिया ।

इस शोर-गुलके जरा-कुछ थम जानेपर अमितने सिसीको लक्ष्य करके कहा, “सिसी, इन्हींका नाम है लावण्य । मुझसे तुमने इनका नाम कभी नहीं सुना, पर, मालूम होता है औरोंके मुँहसे सुन लिया होगा । इनसे मेरा ब्याह होना तय हो गया है,—कलकत्तेमें, अगहनमें होगा ।”

केटीने अपने चेहरेपर हँसी खींच लानेमें देर नहीं की । उसने कहा, “आइ कॉन्ग्रेचुलेट, बधाई है ।” और फिर कहने लगी, “नारंगीका मधु पानेमें विशेष बाधा नहीं हुई मालूम होता है । रास्ता मुश्किल नहीं था, मधु उकलके अपने-आप ही आ गया है मुँहके पास ।”

सिसी अपने स्वाभाविक अभ्यासके अनुसार ही-ही करके हँस उठी ।

लावण्य समझ गई कि उसकी बातमें तीखी चुटकी है, पर, उसका भीतरी अर्थ उसकी कुछ समझमें न आया ।

अमितने उससे कहा, “आज होटलसे चलते समय इनलोगोंने मुझसे पूछा था, ‘फहाँ जा रहे हो’, तो मैंने कहा था, ‘वन्य मधुकी खोजमें ।’ इसीसे ये हँस रही हैं । यह मेरा ही दोष है, इस बातको लोग ताड़ ही नहीं पाते कि मेरी कौनसी बात हँसीकी नहीं है ।”

केटीने शान्त स्वरमें ही कहा, “नारंगीका मधु पाकर तुम्हारी तो जीन हो गई, अब मेरी भी जिससे हार न हो, ऐसा करो ।”

“क्या करना होगा, बताओ ?”

“नरेनसे मेरी एक होड़ लगी-हुई है । उसने मुझसे कहा था, ‘जेण्टिल मैंन लोग जहाँ जाते हैं वहाँ कोई भी तुम्हें नहीं ले जा सकता, हरगिज तुम रेस देखने नहीं जा सकते ।’ मैंने अपनी हीरेकी अँगूठीकी होड़ लगाई है, आज घुड़दौड़में तुम्हें ले ही जाऊँगी मैं । इस देशमें जितने भी भरने हैं, जितनी भी मधुकी दूकानें हैं, सबकी खोज कर-कराके अन्तमें यहाँ आकर तुम्हारे दर्शन मिले हैं ।”

अमितसे इतना कहकर, केटी, सिसीकी तरफ देखकर बोली, “तुम्हीं कहो, बहन सिसी, कितना फिरना पड़ा है जंगली बतकोंके शिकारकी कोशिशमें, अंग्रेजीमें जिसे कहते हैं wild goose ।”

सिसी बिना कुछ जवाब दिये हँसने लगी । केटी कहने लगी, “याद है तुम्हें वह कहानी, एक दिन तुम्हींसे सुनी थी मैंने, ऑमिट ! कोई-एक पर्सियन फिलॉसॉफर अपनी पगड़ीके चोरका पता न लगा सकनेके कारण, अन्तमें, वह कबरिस्तानमें जा बैठा था,—कहता था, भागके जायगा कहाँ ! मिस लावण्य जब कह रही थीं कि तुम्हें वे नहीं जानतीं, तो मुझे चक्करमें डाल दिया था, पर मेरे मनने कहा, घूम-फिरकर उन्हें इस कबरिस्तानमें तो आना ही पड़ेगा ।”

सिसी ठहाका मारकर हँस पड़ी ।

केटीने लावण्यसे कहा, “ऑमिट आपका नाम जबानपर नहीं लाये, मधुर भाषामें घुमाकर बोले, ‘नारंगीका मधु’ ! आपकी बुद्धि बहुत ज्यादा सरल है, घुमाकर कहनेकी तरकीब जबान तक नहीं आती, चटसे कह बैठें, ऑमिटको जानती ही नहीं । फिर भी, सन-डे स्कूलके विधानके अनुसार फल नहीं हुआ, दण्डदाताने आपलोगोंको कोई दण्ड ही नहीं दिया ; कठिन मार्गका मधु भी एक जनेने एक ही घूँटमें गटक लिया, और अपरिचितको भी एक जनेने एक ही दृष्टिमें जान लिया । अब क्या सिर्फ मेरे ही भाग्यमें हार बदी है ? देखो तो, सिसी, कैसा अन्याय है !”

सिसी फिर पहलेकी तरह जोरसे हँस दी । टैबी कुत्तेने भी उच्छ्वासमें शरीक होनेको अपना सामाजिक कर्तव्य समझकर चंचलताका लक्षण दिखाया, और तीसरी बार फिर उसे दमन किया गया ।

केटीने कहा, “ऑमिट, तुम जानते हो, हीरेकी अँगूठीको अगर मैं हार जाऊँ, तो फिर संसारमें मेरे लिए कोई सान्त्वना ही न रह जायगी । यह अँगूठी किसी दिन तुम्होंने दी थी । एक क्षणके लिए भी मैंने यह हाथसे नहीं उतारी, यह मेरी देहके साथ एक हो गई है । अन्तमें आज इस शिलाँग-पहाड़पर क्या इसे होड़में खोना पड़ेगा मुझे ?”

सिसीने कहा, “होड़ बदने ही क्यों चली थीं, वहन ?”

“मन-ही-मन अपनेपर अहंकार था मुझे, और आदमीपर था विश्वास । अहंकार ढह गया,—इस बारकी मेरी ‘रेस’ खतम हो गई, मेरी ही हार हुई । मालूम होता है ऑमिटको अब मैं राजी नहीं कर सकती । किन्तु, इस तरह

अद्भुत ढंगसे ही मुझे हराना था, तो उस दिन इतने आदरसे अँगूठी दी क्यों थी ? उस देनेमें क्या कोई बन्धन नहीं था ? उस देनेमें क्या यह वचन नहीं था कि मेरा अपमान तुम कभी न होने दोगे ?” — कहते-कहते केटीका गला भर आया, बड़ी मुश्किलसे उसने आँसू सम्हाल लिये ।

आज सात साल हो गये, केटीकी तब उमर थी अठारह । उस दिन यह अँगूठी अमितने अपनी उँगलीसे खोलकर उसे पहना दी थी । तब वे दोनों ही इंग्लैण्डमें थे । ऑक्सफोर्डमें एक पंजाबी युवक था केटीके प्रणयमें मुग्ध । उस दिन आपसमें अमितने उस पंजाबीके साथ नदीमें बोट-रेस (नावकी होड़) खेली थी । अमितकी ही जीत हुई । जून महीनेकी चाँदनीमें सारा आकाश मानो बातें करने लग गया था, बाग-बगीचों और मैदानोंमें फूलोंके अनेकों वैचित्र्यसे घरणोने मानो अपना धैर्य खो दिया था । उन्हीं क्षणोंमें अमितने केटीकी उँगलीमें अँगूठी पहना दी थी । उसमें बहुतसी बातें अनुक्त थीं, किन्तु कोई भी बात छिपी-हुई नहीं थी । उस दिन केटीके चेहरेपर शृङ्गारका प्रलेप नहीं लगा था, उसकी हँसी स्वाभाविक थी, भावके आवेगमें उसका चेहरा सुख होनेमें बाधा नहीं मानता था । अँगूठी पहना चुकनेके बाद अमितने उसके कानमें कहा था—

Tender is the night

And haply the queen moon is on her throne.

केटीने तब ज्यादा बात करना नहीं सीखा था । एक गहरी साँस लेकर मन-ही-मन मात्र इतना ही कहा था, ‘मॉन अमी’, फरासीसी भाषामें जिसका अर्थ है ‘प्रियतम’ । आज अमितकी जबान भी जवाब देनेमें अटक गई । सोच ही न सका कि क्या कहे । केटीने कहा, “होड़में यदि हार ही गई हूँ मैं, तो मेरा यह चिरकालकी हारका चिह्न तुम्हारे ही पास रहने दो, ऑमिट ! अपने पास रखकर इसे मैं झूठ नहीं बोलने दूँगी ।” इतना कहकर अँगूठी खोलकर उसने टेबिलपर रख दी, और तुरन्त ही वहाँसे वह आँधीकी तरह तेजीसे चली गई । उसके कलई किये-हुए चेहरेपरसे आँसुओंकी धारा बहने लगी ।

१६-मुक्ति

एक छोटीसी चिट्ठी आई है लावण्यके पास, शोभनलालकी लिखी-हुई :—

“कल रातको मैं शिलाँग आया हूँ। यदि मिलनेकी अनुमति दो, तो मैं मिलने आऊँगा। यदि न दो, तो कल ही वापस चला आऊँगा। मुझे तुमसे दण्ड तो मिला, किन्तु मुझसे कब क्या अपराध बन पड़ा, सो आज तक मैं स्पष्ट-रूपसे नहीं जान सका। आज आया हूँ तुम्हारे पास उस बातको सुननेके लिए, इसके बिना मनमें शान्ति नहीं पा रहा था। डरना मत। मेरी और-कुछ भी प्रार्थना नहीं है।”

लावण्यकी आँखें भर आईं। आँसू पोंछ डाले उसने। चुपचाप बैठी पीछे मुड़कर देखती रही अपने अतीतकी ओर। जो अंकुर बड़ा होकर विकसित हो सकता था और जिसको कि उसने उगते ही दबा दिया, बढ़ने नहीं दिया, उसकी उस कच्चेपनकी कहुण भीरुताकी उसे याद आ गई। अब तक वह उसके सम्पूर्ण जीवनपर अधिकार करके उसे सफल कर सकता था। किन्तु उस दिन उसमें था ज्ञानका गर्व, विद्याकी एकनिष्ठ साधना, उद्धत स्वातंत्र्य-बोध। उस दिन अपने पिताकी मुग्धताको देखकर, प्रेमको दुर्बलता बताकर, उसने मन-ही-मन उसे धिक्कारा है। प्रेमने आज उसका बदला लिया है उससे। उसका वह अभिमान आज धूलमें मिल गया। उस दिन जो बात सहजमें हो सकती थी साँस-उसासकी तरह, सरल हँसीकी तरह, आज वह कठिन हो उठी। उस दिनके जीवनके इस अतिथिको बाँह पसारकर ग्रहण करनेमें आज बाधा आ पड़ती है और उसे त्यागनेमें भी छाती फटती है। आज उसे याद उठ आई अपमानित शोभनलालकी उस दिनकी संकुचित व्यथित मूर्तिकी। उसके बाद कितने दिन बीत गये, उस युवकका वह प्रत्याख्यात प्रेम इतने दिन किस अमृतसे जीवित रहा ? अपने ही आन्तरिक माहात्म्यसे।

लावण्यने अपनी चिट्ठीमें लिखा :—

“तुम मेरे सबसे बड़े बन्धु हो। इस बंधुत्वका मैं पूरा मूल्य दे सकूँ, ऐसा धन आज मेरे हाथमें नहीं है। तुमने किसी दिन मूल्य नहीं चाहा, आज भी

तुम अपनी देनेकी चीज ही देने आये हो, बिना किसी दावेके। 'नहीं चाहिए' कहकर मैं उसे लौटा सकूँ, ऐसी शक्ति मुझमें नहीं है, और न ऐसा अहङ्कार ही है।"

चिट्ठी लिखकर भेज दी उसने।

इतनेमें अमितने आकर कहा, "बन्या, चलो आज दोनों जने घूम आयें।"

अमितने डरते-हुए ही कहा था ; सोचा था कि लावण्य शायद चलनेको राजी नहीं होगी। लावण्यने सहज ही में कहा, "चलो।"

और चल दिये दोनों घूमने।

अमितने कुछ दुविधाके साथ ही लावण्यका हाथ अपने हाथमें लेनेकी चेष्टा की। लावण्यने जरा भी बाधा न देकर हाथ पकड़ने दिया। अमितने हाथको जरा जोरसे मसक दिया, इसीसे उसकी मनकी बात जितनी भी व्यक्त हो सकती थी उससे ज्यादा उसकी जबानपर कुछ नहीं आया। चलते-चलते दोनों उस दिनकी उसी जगह जगह आ पहुँचे, जहाँ जंगलमें सहसा जरा खुला-हुआ-सा है। एक वृक्ष-शून्य पहाड़की चोटीपर सूर्य अपना अन्तिम स्पर्श देकर उतर गया। अति-सुकुमार हरियालीकी आभा धीरे-धीरे सुकोमल नीलिमामें विलीन हो गई। और ये दोनों वहाँ ठहरकर उसी ओर मुँह किये खड़े रहे। लावण्यने धीरेसे कहा, "एक दिन एक-जनीको जो अँगूठी पहनाई थी, मेरे द्वारा उसकी वह अँगूठी क्यों खुलवाई?"

अमितने व्यथित होकर कहा, "मैं तुम्हें सब बातें समझाऊँ कैसे, बन्या। उस दिन मैंने जिसे अँगूठी पहनाई थी और आज जिसने उसे खोलकर लौटा दिया है, वे दोनों क्या एक ही हैं?"

लावण्यने कहा, "उनमेंसे एक सृष्टिकर्ताके लाड़-प्यारसे बनी-हुई थी और दूसरी तुम्हारे अनादरसे बनी है।"

अमितने कहा, "बात सम्पूर्णतः ठीक नहीं है। जिस आघातसे आजकी केटी बनी है उसका दायित्व केवल मुझ अकेलेपर नहीं है।"

"किन्तु, मीता, अपनेको जिसने एक दिन सम्पूर्णरूपसे तुम्हारे हाथ सौंप दिया था उसे तुमने अपनी बनाकर क्यों नहीं रखा ? किसी भी कारणसे हो,

पहले तुम्हारी मुट्ठी ढीली हुई है, उसके बाद अन्य दस-पाँचके मनके अनुकूल वह अपनेको सजाने बैठ गई होगी। और आज तो देखती हूँ, वह विलायती दूकानकी गुड़िया बन गई है। ऐसा सम्भव न होता यदि उसका हृदय जीवित रहता। जाने दो इन-सब बातोंको। तुमसे मेरी एक प्रार्थना है। माननी पड़ेगी तुम्हें।”

“बोलो, जरूर मानूँगा।”

“कमसे कम एक सप्ताहके लिए तुम अपने दिलको लेकर चेरापुञ्जी घूम आओ। उसे आनन्द अगर न भी पहुँचा सको, तो कमसे कम आमोद तो दे ही सकते हो।”

अमित जरा चुप रहकर बोला, “अच्छा।”

उसके बाद लावण्यने अमितकी छातीके पास अपना मुँह छिपाते-हुए कहा, “एक बात तुमसे कहती हूँ, मीता, फिर कभी न कहूँगी। तुम्हारे साथ मेरा जो अन्तरंग सम्बन्ध है उसके लिए तुमपर लेशमात्र दायित्व नहीं है। मैं नाराजीसे नहीं कह रही, अपने सम्पूर्ण प्रेमसे ही कह रही हूँ, मुझे तुम अँगूठी मत दो। कोई चिह्न रखनेकी कतई आवश्यकता नहीं, मीता ! मेरे प्रेमको निरंजन ही रहने दो। बाहरकी रेखा बाहरकी छाया उसपर नहीं पड़ेगी।” इतना कहकर उसने अपनी उँगलीसे अँगूठी खोलके धीरेसे अमितकी उँगलीमें पहना दी। अमितने इसमें किसी प्रकारकी बाधा नहीं दी।

संध्याकी इस पृथ्वीने जैसे अस्त-रश्मिसे उद्भासित आकाशकी ओर चुपकेसे अपना मुँह उठाया, ठीक वैसी ही नीरवतासे, वैसी ही शान्त दीप्तिसे लावण्यने अपना मुँह उठा दिया अमितके झुके-हुए मुँहकी ओर।

सात दिन बीतते ही अमित वापस आकर योगमायाके मकानपर गया। घर बन्द था। सब-कोई चले गये हैं। कहाँ गये, इसका कोई पता-ठिकाना नहीं छोड़ गये। उसी युकैलिप्टस-पेड़के नीचे वह जा खड़ा हुआ। कुछ देर तक सूने मनसे वहीं घूमता रहा। परिचित मालीने आकर उसे सलाम किया और पूछा, “घर खोल दूँ, बाबू सा’ब ? भीतर बैठोगे ?”

अमितने जरा-कुछ दुबिधाके साथ कहा, “हाँ।”

भीतर जाकर वह लावण्यके बैठनेके कमरेमें गया। कुरसी टेबिल शेल्फ सब-कुछ है, पुस्तकें नहीं हैं। फर्शपर दो-एक फटे-हुए रीते लिफाफे पड़े हैं,

उनपर अज्ञात हाथके अक्षरोंमें लावण्यका नाम और पता लिखा है। टेबिलपर दो-चार व्यवहृत-हुए निब पड़े हैं और एक क्षयप्राप्त अत्यन्त छोटी पेन्सिल। पेन्सिल उठाकर उसने जेबमें रख ली। उसके बगलमें ही लावण्यका सोनेका कमरा था। उसमें जाकर अमितने देखा, लोहेके पलंगपर सिर्फ एक गद्दी और आईनेकी टेबिलपर एक रीती तेलकी शीशी पड़ी है। अमित दोनों हथेलियोंपर अपना सिर रखकर उस गद्दीपर चित लेट गया। लोहेका पलंग आवाज कर उठा। उस कमरेमें एक तरहकी गूँगी शून्यता है। उससे कोई बात पूछी जाव तो वह उसका कुछ जवाब ही नहीं दे सकती। वह एक मूर्छा है, जो कभी भी दूर नहीं होनेकी।

इसके बाद, शरीर और मनपर निरुद्यमका एक बोझ-सा लेकर अमित अपनी कुटियाकी ओर चल दिया। जो-कुछ जैसे वह छोड़ गया था, सब ज्योंका त्यों पड़ा-हुआ है। यहाँ तक कि योगमाया अपनी आरामकुरसी भी वापस नहीं ले गई। समझ गया कि मौसीजी स्नेहसे ही कुरसी उसे दे गई हैं। उसे ऐसा लगा जैसे अभी-अभी उसे सुनाई दिया हो, उनका वह शान्त मधुर स्वरका आह्वान, 'बेटा !' उस कुरसीके सामने सिर टेककर अतिमने प्रणाम किया।

सारे शिलाँग-पहाड़की श्री आज चली गई है। अमितको अब कहीं भी सान्त्वना नहीं मिल रही।

१७—आखिरी कविता

यतिशङ्कर कलकत्तेके एक कॉलेजमें पढ़ता है ; और रहता है प्रेसिडेन्सी कॉलेजके कोल्हट्टोला-वाले मेसमें। अमित उसे अकसर अपने घर ले आया करता है, खिलाता-पिलाता है, उसके साथ तरह-तरहकी पुस्तकें पढ़ता है, तरह-तरहकी अद्भुत बातोंसे उसके मनको चौंका दिया करता है ; और मोटरमें बिठाकर उसे घुमा भी लाता है।

फिर, कुछ दिनों तक, यतिशङ्करको अमितकी कोई निश्चित खबर नहीं मिली। कभी सुना कि वह नैनीतालमें है, कभी मालूम हुआ कि उटकमण्ड चला गया है। एक दिन सुना, अमितका एक मित्र कह रहा था कि आजकल

वह केटी भित्तिरका बाहरी रंग छुड़ानेमें कमर कसके जुट पड़ा है। अब उसे काम मिला है मनचाहा, वर्ण बदलनेका। अब तक अमित मूर्ति गढ़नेका शौक मिटाया करता था बातोंसे, आज उसे मिल गया है सजीव आदमी। और वह आदमी भी ऐसा कि एक-एक करके अपने ऊपरकी रंगीन पपड़ियाँ छुड़ा फेंकनेमें राजी है, इस आशासे कि अन्तमें फल प्राप्त होगा। लोग कहते हैं, अमितकी बहन सिसीका कहना है कि केटीको अब बिलकुल पहचाना ही नहीं जा सकता, अर्थात्, अब वह बहुत ज्यादा स्वाभाविक-सी मालूम होती है। मित्रमण्डलीमें उसने कह दिया है कि उसे अब 'केतकी' कहा जाय। यह उसके लिए निर्लज्जा है,—जो स्त्री किसी समय बारीक शान्तिपुरी साड़ी पहना करती थी उस लज्जावतीके हाल-फैशनकी पोशाक पहननेके समान। यह भी सुना गया है कि अमित एकान्तमें उसे 'केवा' कहके सम्बोधित करता है। लोग इस बातकी भी कानाफूसी करते हैं कि नैनीतालके सरोवरमें नाव बहाकर केटने उसकी पतवार थामी है और अमितने उसे पढ़के सुनाई है रवीन्द्रकी 'निरुद्देश यात्रा'। परन्तु, लोग क्या नहीं कहते? यतिशङ्करने स्पष्ट समझ लिया है कि अमितका मन पाल चढ़ाकर चल दिया है छुट्टी-तत्त्वके बीच दरियामें।

अन्तमें अमित लौट आया। शहरमें बात फैल गई कि केतकीके साथ उसका ब्याह होगा। और, मजा यह कि अमितके अपने मुंहसे एक दिन भी यतिने इसका जिक्र नहीं सुना। अमितके व्यवहारमें भी बहुत-कुछ रद्दो-बदल हो गया है। पहलेकी तरह अब भी वह यतिको अंग्रेजी किताबें खरीदकर उपहारमें दिया करता है, पर उसके साथ शामको बैठकर उन-सब किताबोंकी आलोचना नहीं करता। यति समझ गया है कि आलोचनाकी धारा अब दूसरे एक नये रास्तेसे बह रही है। आजकल मोटरमें घूमने जानेके लिए वह यतिको नहीं बुलाता। यतिकी उमरमें यह बात समझना कठिन नहीं है कि अमितकी 'निरुद्देश-यात्रा'की पार्टीमें तीसरे व्यक्तिके लिए जगह होना असम्भव है।

यतिसे अब रहा नहीं गया। अमितसे उसने खुद ही अपनी तरफसे गर्ज दिखाकर पूछा, “अमित भाई सा’ब, सुना है कि मिस केतकी मित्रके साथ तुम्हारा ब्याह होगा?”

अमित जरा चुप रहके बोला, “लावण्यको क्या यह बात मालूम हो गई है?”

“नहीं, मैंने उन्हें नहीं लिखा। तुम्हारे मुँहसे पक्की खबर नहीं मिली, इसीलिए चुप हूँ।”

“खबर सच है, पर, लावण्य शायद गलत समझ जायेगी।”

यतिने हँसते-हुए कहा, “इसमें गलत समझनेकी गुंजाइश कहाँ है? ब्याह करोगे तो ब्याह ही करोगे, सीधी बात है।”

“देखो, यति, आदमीकी कोई बात ही सीधी नहीं होती। कोशमें हम जिस शब्दका एक अर्थ बाँध देते हैं, मानव जीवनमें उस अर्थके टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, जैसे समुद्रकी गोदमें गङ्गाके।”

“अर्थात्, तुम कह रहे हो कि ‘विवाह’का अर्थ विवाह नहीं है?”

“मैं कह रहा हूँ, विवाहके हजार अर्थ हैं। आदमीके साथ मेल मिलाकर उसके अर्थ होते हैं, आदमीको अलग करके उसके अर्थ लगाये जायें तो पहेली बन जाती है।”

“तो, तुम अपना विशेष अर्थ ही क्यों नहीं बता देते?”

संज्ञासे नहीं बताया जा सकता, जीवनसे बताना पड़ेगा। अगर कहूँ कि उसका मूल-अर्थ है ‘प्रेम’, तो भी और-एक विषयमें जा पड़ूँगा। ‘प्रेम’-शब्द ‘विवाह’-शब्दकी अपेक्षा और भी अधिक जीवित है।”

“तब तो, भाई साहब, इस तरह तो बात ही करना बन्द कर देना पड़ेगा। शब्दोंको कंधेपर लिये-लिये अर्थके पीछे-पीछे दौड़ना पड़ेगा, और अर्थ बायेंसे खदेड़े तो दाहने और दाहनेसे खदेड़े तो बायें भागना पड़ेगा, ऐसे तो काम नहीं चलनेका।”

“भाई, तुमने बेजा तो नहीं कहा। मेरे साथ रहते-रहते तुम्हारी जबान खुल गई है। संसारमें काम तो किसी तरह चलाना ही पड़ता है, इसलिए शब्दोंकी अत्यन्त जरूरत है। जिन सत्त्योंको शब्दोंमें नहीं लाया जा सकता, व्यवहारके बाजारमें मैं उनको छाँट देता हूँ, और शब्दोंको ही प्रकट करता हूँ। और उपाय ही क्या है? इससे मीमांसा भलेही ठीक न हो, पर, आँख मीचकर काम चलाया जा सकता है।”

“तो क्या आजकी बातको बिल्कुल ही खतम कर डालना होगा ?”

“यह आलोचना अगर महज ज्ञानके लिए हो, हृदयके लिए न हो, तो खतम करनेमें कोई दोष नहीं ।”

“मान लो, हृदयके लिए ही है ।”

“शाबाश ! तो सुनो ।”

यहाँ जरा-सी टिप्पणी लगा देनेमें कोई दोष नहीं होगा । यतिशंकर आजकल अकसर अमितकी छोटी बहन लिसीके हाथकी चाय पीया करता है । इससे, अनुमान किया जा सकता है कि इसी कारण उसके मनमें इस बातका किंचिन्मात्र भी क्षोभ नहीं है कि अमितने उसके साथ तीसरे पहर साहित्यालोचना करना और शामको मोटरमें घूमना बन्द कर दिया है । अमितको उसने सर्वान्नकरणसे क्षमा कर दिया है ।

अमित कहने लगा, “ऑक्सिजेन एक रूपमें तो बहती रहती है हवामें अदृश्य रहकर, उसके बिना प्राण नहीं बच सकते, और दूसरे रूपमें वह कोयलेके साथ जलती रहती है, वह आग जीवनके अनेक कामोंमें आवश्यक है, दोनोंमेंसे किसीका भी बहिष्कार नहीं किया जा सकता । अब समझ गये ?”

“पूरी तरह नहीं समझा, पर समझनेकी इच्छा है ।”

“जो प्रेम व्याप्त - रूपसे आकाशमें मुक्त रहता है, अन्तःकरणमें वह देता है ‘संग’ यानी साथ, और जो प्रेम विशेषरूपसे प्रतिदिनके सब-कुछसे युक्त रहता है, संसारमें वह देता है ‘आसंग’ यानी सहवास । मैं दोनों ही चाहता हूँ ।”

“तुम्हारी बात ठीक समझ रहा हूँ या नहीं, यही समझमें नहीं आता । और जरा खुलासा करके बताओ, भाई साहब !”

अमितने कहा, “एक दिन मैंने अपने सम्पूर्ण डैने फैलाकर पाया था अपना उड़नेका आकाश, और आज मैंने पाया है अपना छोटा-सा नीड़ । अब डैने समेटकर आ बैठा हूँ उसी घोंसलेमें, किन्तु मेरा आकाश भी ज्योंका त्यों बना हुआ है ।”

“किन्तु, विवाहमें तुम्हारे वे ‘संग’ और ‘आसंग’ क्या एकसाथ ही नहीं मिल सकते ?”

“जीवनमें बहुतसे सुयोग मिल सकते हैं, किन्तु मिलते नहीं हैं। जिस आदमीको आधा राज्य और राजकन्या दोनों एक-ही-साथ मिल जाते हैं उसका भाग्य अच्छा है, जिसे वह नहीं मिलता उसे दैवसे अगर दाहनी तरफसे मिले राज्य और बाईं तरफसे मिल जाय राजकन्या, तो वह भी कम सौभाग्यकी बात नहीं।”

“किन्तु —”

“किन्तु, तुम जिसे समझते हो रोमान्स, उसमें कभी पड़ जाती है, यही न ? जरा भी नहीं। कहानीकी पुस्तकोंमेंसे ही हमें रोमान्सकी बँधी-हुई खुराक उसी साँचेमें ढालकर जुटानी पड़ेगी क्या ? कदापि नहीं। अपना रोमान्स मैं खुद ही बनाऊँगा। मेरे स्वर्गमें भी रोमान्स रहेगा, और मर्त्यमें भी रोमान्सकी सृष्टि करूँगा मैं। जो लोग इनमेंसे एकको बचानेके लिए दूसरेको दिवालिया बना देते हैं, उन्हींको तुम कहते हो ‘रोमाण्टिक’ ! वे या तो मक्खलीकी तरह पानीमें तैरते हैं, या बिल्लीकी तरह जमीनपर घूमा करते हैं, अथवा चमगादड़की तरह आकाशमें चकर लगाते हैं। मैं रोमान्सका परमहंस हूँ मैं। प्रेमके सत्यको मैं एक ही शक्तिसे जल-स्थलमें उपलब्ध करूँगा, और आकाशमें भी। नदीके टापूर पर तो रहेगा मेरा पक्का दखल, और मानसकी ओर जब मैं यात्रा करूँगा तब वह होगी आकाशके मुक्त मार्गसे। जय हो मेरी लावण्यकी, जय हो मेरी केतकीकी, और सभी तरफसे धन्य हो अमित राय !”

यतिशंकर स्तब्ध होकर बैठा रहा। शायद बात उसे ठीक जची नहीं। अमितने उसका चेहरा देखकर मुसकराते-हुए कहा, “देखो, भाई, सब बातें सबके लिए नहीं होतीं। मैं जो कुछ कह रहा हूँ, हो सकता है कि वह सिर्फ मेरी ही बात हो। उसे तुम अपनी बात समझके कहीं गलती कर बैठे तो बिलकुल गलत समझ बैठोगे। मुझे बुरा-भला कह बैठोगे। एककी बातपर दूसरेका अर्थ लादे जानेके कारण ही संसारमें युद्ध-विग्रह और खूनखराबी हुआ करती है। अब मैं अपनी बातको साफ-साफ ही कह दूँ तुमसे। रूपकके तौरपर ही कहना पड़ेगा, नहीं-तो, इन सब बातोंका रूप ही मारा जाता है, शब्द लज्जित हो उठते हैं। केतकीके साथ मेरा सम्बन्ध प्रेमका ही है, किन्तु

वह मानो घड़ेमें भरा-हुआ पानी है, रोज भरूँगा और रोज काममें लाऊँगा और, लावण्यके साथ मेरा जो प्रेम है वह सरोवरके रूपमें बना रहेगा, वह लानेकी चीज नहीं, मेरा मन उसमें तैरा करेगा ।”

यतिने जरा कुछ संकुचित होते-हुए कहा, “किन्तु, भाई-साहब, दोनों एक ही को चुन लेना क्या ठीक नहीं ?”

“जिसके लिए ठीक है उसीके लिए है, मेरे लिए नहीं ।”

“किन्तु, श्रीमती केतकीको यदि —”

“वे सब जानती हैं । सम्पूर्णतः समझती हैं या नहीं, मैं नहीं कह सकता । परन्तु, मैं अपने सम्पूर्ण जीवनसे उन्हें यही समझाऊँगा कि उन्हें मैं कहींसे भी वंचित नहीं रख रहा, धोखा नहीं दे रहा । और उन्हें भी यह समझना होगा कि लावण्यका उनपर उपकार है, वे उनकी ऋणी हैं ।”

“सो होने दो, श्रीमती लावण्यको तो तुम्हारे ब्याहकी खबर जतानी ही पड़ेगी ।”

“जरूर जताऊँगा । किन्तु, उसके पहले, मैं एक चिट्ठी देना चाहता हूँ उसे तुम पहुँचा दोगे ?”

“पहुँचा दूँगा ।”

अमितने चिट्ठीमें लिखा :—

“उस दिन सन्ध्याके सन्धि-क्षणमें पथान्तमें आकर जब खड़ा हुआ तब कवितासे ही यात्राका अन्त कर दिया था । आज भी आकर रुक गया हूँ एक मार्गके अन्तमें । अब किसी बातका भार नहीं सहा जायगा । अभाग निवार चक्रवर्ती जिस दिन पकड़ाई दिया उसी दिन मर मिटा, अत्यन्त शौकीन नाजुक जलचर मछलीकी तरह । इसीसे, और कोई उपाय न देखकर मैं तुम्हारे ही कविपर भार सौंप रहा हूँ अपनी ‘अन्तिम बात’ तुम्हें जतानेके लिए :—

तुम्हारे अन्तर्धान - पटपर देखा तब रूप चिरन्तन,

देखा उरके अलक्ष्य-लोकमें अनूप तब शेष आगमन ।

हुई चिरस्पर्शमणि प्राप्त ;

मेरी शून्यताको पूर्णतासे अपनी तुम
 कर गई दिग्-दिगन्त व्याप्त ।
 जीवन अँधेरा हुआ, उसी क्षण हुआ भान, —
 मेरे मन-मन्दिरमें तुम्हीं कर गई, देवी,
 सान्ध्य देव-दीप दान ।
 विरह-होमाग्निके हुताशनमें पूजनकी मूर्ति बन
 दे दिया दुःखके प्रकाशमें
 प्रेमने दर्शन - दान ।

— मीता ।”

इसके बाद, और भी कुछ समय बीत गया । उस दिन केतकी गई थी अपनी बहनकी लड़कीके अन्नप्राशनमें । अभित नहीं गया । आरामपुरसीपर बैठा सामनेकी चौकीपर पैर पसारकर वह ‘विलियम जेम्सकी पत्रावली’ पढ़ रहा था । इतनेमें यतिशंकरने आकर लावण्यकी लिखी-हुई एक चिट्ठी उसके हाथमें दी । चिट्ठीके एक पन्नेमें शोभनलालके साथ लावण्यके विवाहका संवाद था । ब्याह होगा छै महीने बाद, जेठके महीनेमें, रामगढ़-पर्वतके शिखरपर । पत्रके दूसरे पन्नेमें था :—

हे बन्धु, मेरे मीत,
 कालकी क्या यात्राध्वनि सुन रहे तुम्हारे कान ?
 काल-रथ नित्य ही द्रुत - गतिमें है धावमान ।
 जगा रहा अन्तरीक्ष हृदयमें स्पन्दन है,
 रथचक्र-पिष्ट अन्धकार
 मचा रहा हाहाकार
 उसीका यह छाती-फाड़ स्तब्ध महा-क्रन्दन है ।
 अहो बन्धु, मीत मेरे,
 उसी धावमान कालने
 अपने जटिल जालमें
 जकड़ लिया मुझे, और —

डाल निज क्रूर द्रुत रथमें
 दुस्साहसी भ्रमणके पथमें -
 ले चला है काल मुझे तुमसे अत्यन्त दूर ।
 लगता है मानो मैं अनन्त मृत्यु-सिन्धु क्रूर
 पार कर आ गई हूँ दौड़कर
 आज नव प्रातःके शिखरपर,
 रथका चंचल वेग वायुमें उड़ाके कर रहा लय
 मेरा पूर्व - परिचय ।
 लौटनेका पथ नहीं
 दूरसे जो देखो कहीं
 मुझे पहचान ही सकोगे नहीं ।
 हे बन्धु, मेरे मीत,
 गाती मैं विदाका गीत ।

किसी दिन कार्य-हीन पूर्ण अवकाशमें
 निर्जन जिस रातमें वासन्ती बतासमें
 अतीतके तीरसे बहेगा जब दीर्घ श्वास,
 वृन्तच्युत वकुल-विलापसे व्यथित होगा जब नीलाकाश,
 तब ढूँढ़ देख लेना, मेरे पीछे मेरा कुछ गया छूट
 तब प्राणोंमें ही । वह विस्मृत प्रदोषमें उठेगा फूट,
 सम्भव है फेर देगा नव-ज्योति नव-रूप,
 सम्भव है नाम - हीन स्वप्नका धरेगा रूप ।
 किन्तु वह स्वप्न नहीं, नहीं स्वप्न सुनिश्चय,
 सर्वोपरि वही मेरा सत्य है, वही मेरा मृत्युञ्जय,
 वही है मेरा प्रेम, वही है मेरा प्यार ।
 उसे छोड़ आई मैं तुम्हारे पास निर्विकार,
 अपरिवर्तनशील अर्थ वह मेरा है तुम्हारे प्रति,

हे बन्धु, बही जा रही हूँ मैं परिवर्तनकी धारामें क्षिप्रगति,
 . कालकी यात्रामें, मीत !
 गाती मैं विदाका गीत ।

कोई भी तुम्हारी हानि हुई नहीं ।
 मृत्युशील मृत्तिका है मेरी, उससे जो कहीं
 तुमने अमृत मूर्ति रची हो, तो, सायंकाल
 उसकी ही आरती उतारना प्रदीप बाल ।
 पूजा और अर्चनाका खेल बह
 पायेगा व्याघात नहीं मेरे म्लान स्पर्श-द्वारा अहरह ।
 तृपार्त आवेगसे भी नैवेद्यके थालमें
 एक भी न होगा भ्रष्ट पुष्प किसी कालमें ।
 अपने मानस-भोजमें तुमने है सँजोया भव्य
 वाणीकी पिपासासे जो भाव-रस-पात्र नव्य,
 उसमें मैं मिश्रित कदापि न करूँगी रिक्त
 जो है मेरा धूलि-धन, जो है मेरे आँसुओंसे नित्य रिक्त ।
 आज भी तो तुम स्वतः
 सिरजोगे सम्भवतः
 मेरी स्मृति गूँथ-गूँथ स्वप्निल सुकाव्य-हार ।
 उसपर होगा नहीं दायित्व या कोई भार ।
 हे बन्धु, मेरे मीत,
 गाती मैं विदाका गीत ।

मेरे लिए करना न दुःख-शोक,
 मेरे लिए पड़ा है कर्म, और पड़ा विश्व-लोक ।
 मेरा पात्र रिक्त कभी हुआ नहीं,
 'शून्यको करूँगी पूर्ण', धारण करूँगी सदा व्रत यही ।

की हो प्रतीक्षा यदि किसीने उद्ग्रीव हो —

मेरी तो, वह अनन्य

शुद्धको करेगा धन्य ।

शुक्ल-पक्षसे निकाल

रजनीगन्धाकी डाल,

कृष्ण-पक्ष रात्रिमें जो

सँजो सके अर्घ्य-थाल,

अमित क्षमासे भरी दृष्टिसे जो

मुझे देख सकता हो —

मेरे गुण-दोषोंपर बिना दिये रञ्च ध्यान,

उसकी ही पूजामें चाहती हूँ देना मैं

अपना यह क्षण-क्षणका बलिदान ।

तुम्हें मैंने दिया था जो उपहार

उसपर तुम पा चुके अशेष अधिकार ।

हे बन्धु, यहाँ तो है तिल-तिलका मेरा दान,

करुण मुहूर्त-क्षण भर-भर गण्डूष आज

मेरी हृदय-अंजलिसे कर रहे मेरा पान ।

अहो तुम निरुपम, हे मेरे ऐश्वर्यवान,

दिया मैंने तुम्हें जो कुछ, है वह तुम्हारा ही दान,

तुमने ग्रहण किया जितना ही

मुझे ऋणी किया उतना ही ।

हे बन्धु, मेरे मीत,

गाती मैं विदाका गीत ।

—बन्या ।

—

बंगला-रचना : बंगलोर : जून १९२८

हिन्दी-अनुवाद : अजमेर : मार्च १९४४

शोधित-रूप : कलकत्ता : जनवरी १९५१

